11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 311

हिंदी नवजागरण और 'अछूत समस्या'

सुरेश कुमार

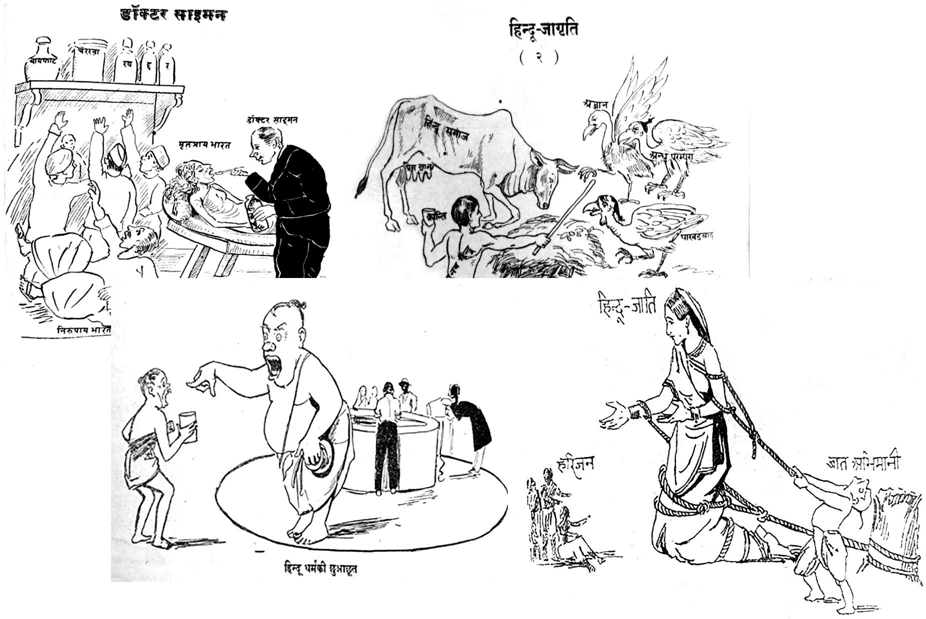

वास्तव में साहित्य और इतिहास के आलोक में देखा जाए तो औपनिवेशिक भारत की बीसवीं सदी का तीसरा और चौथा दशक साहित्यिक और सामाजिक सुधारवादी आंदोलन की गतिविधियों से भरा रहा है। जहाँ एक तरफ़ स्वराजवादी आंदोलन का मसौदा अंगड़ाई ले रहा था, वहीं अछूत समस्या एक ज्वलंत मुद्दा बनकर उभर रही थी। दरअसल, सन् 1911 और 1921 की जनगणना के आँकड़े जब प्रकाशित हुए तो उसमें लगभग नौ लाख हिंदू घट गए थे। अछूत हिंदुओं की जाति-प्रथा के अत्याचारों से तंग होकर धर्मांतरण की ओर अपना रुख करने लगे थे। हिंदी नवजागरणकालीन लेखकों और संपादकों ने हिंदू धर्म में हो रही घटोतरी को हिंदुओं के भीषण ह्रास के तौर पर देखा था। सन् 1922 में उत्तर भारत में स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' की अगुवाई अछूतों के एक नए आंदोलन का उदय हुआ। जो साहित्य और इतिहास में 'आदि-हिंदू' आंदोलन के नाम से जाना गया। स्वामी अछूतानन्द हरिहर के अछूत आंदोलन और साइमन कमीशन के आगमन की हलचलों ने हिंदी पट्टी के संपादकों, लेखकों और सुधारकों को अछूत समस्या की ओर ध्यान देने के लिए विवश कर दिया था। सन् 1927 में

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 312

साइमन कमीशन का गठन सामाजिक सुधार संबंधी बातों का जायज़ा लेने के लिया हुआ। *माधुरी चाँद*, *सुधा*, *त्यागभूमि* सरीखी साहित्यिक पत्रिकाओं ने साइमन कमीशन के आगमन का बहिष्कार बड़े दमखम के साथ किया। हिंदी संपादकों का तर्क था कि अंग्रेज़ अफ़सरों का दल हिंदुओं की परीक्षा कैसे ले सकता है। जहाँ हिंदी संपादक और सुधारक साइमन कमीशन के आगमन को पराधीनता का कठोरतम दंड बताकर बहिष्कार कर रहे थे, वहीं अछूत नेताओं ने साइमन कमीशन के आगमन के स्वागत का ऐलान कर हिंदू नेताओं और सुधारकों को चकित कर दिया था। ध्यातव्य है कि अभी1930 का घटनापूर्ण दशक नहीं आया था, न तो लन्दन में गोलमेज़-सम्मेलन हुआ था और न ही पूना पैक्ट लेकिन डॉ. भीमराव आंबेडकर 25 दिसम्बर 1927 को मनु के विधान का दहन कर चुके थे। वे तालाबों और कुओं में सार्वजनिक हिस्सेदारी के लिए अछूतों को गोलबंद कर भी कर रहे थे। उन्होंने अछूत मसले पर सिर्फ़ सवर्ण सुधारकों की आलोचना नहीं की, बल्कि ब्रिटिश शासन को भी आड़े हाथों लिया। सन् 1930 में नागपुर में आयोजित 'अखिल भारतीय दलित सम्मेलन' में सभापति की हैसियत से डॉ. आंबेडकर अपने भाषण में ब्रिटिश सरकार की तीखी आलोचना करते नज़र आए।[1] इन्हीं साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों के बीच बीसवीं सदी का वह महत्त्वपूर्ण दशक आकार ले रहा था जिसमें गोलमेज़ और पूना-पैक्ट जैसी ऐतिहासिक घटनाएँ घटित होने वाली थीं।

इस लेख के केंद्र में मूलत: हिंदी नवजागरणकालीन लेखकों और संपादकों का साहित्य और विचार है। हिंदी नवजागरणकालीन अग्रदूतों का 'गोलमेज़ सम्मेलन','पूना-पैक्ट' और 'अछूत समस्या' पर नज़रिया क्या था? इन ऐतहासिक परिघटनाओं ने हिंदी नवजागरण कालीन सवर्ण संपादकों और लेखकों के समक्ष ऐसी कौन सी चुनौतियाँ और मजबूरियाँ पेश कर दीं कि उन्हें अछूत समस्या पर ध्यान देना पड़ा। इन्हीं कड़ियों की पड़ताल करने का प्रयास इस लेख में किया जाएगा। इस लेख की शोध सामग्री के स्रोत *चाँद*, *माधुरी*, *सुधा*, *सरस्वती*, *विश्वमित्र*, *त्यागभूमि*, *महारथी*, *युगान्तर*, *ब्राह्मण सर्वस्व* आदि नवजागरणकालीन पत्रिकाएँ हैं।

साइमन कमीशन ने जैसे ही अपनी रिपोर्ट 10 और 24 जून 1930 को प्रस्तुत की वैसे ही ब्रिटिश सरकार ने लंदन में गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया। सन् 1930 के नवंबर महीने में आयोजित प्रथम गोलमेज़ सम्मेलन का कॉन्ग्रेसी लीडरों ने बहिष्कार किया था। इस प्रथम गोलमेज़ सम्मेलन में कॉन्ग्रेस की ओर से कोई प्रतिनिधि शामिल नहीं हुआ था। इधर, 5 मार्च 1931 को गांधी और इरविन समझौता हो चुका था। सन् 1931के सितम्बर महीने में दूसरी

[1] डॉ. आंबेडकर अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में बड़े ज़ोरदार शब्दों में पूछते हैं कि वे कौन से प्रश्न हैं, जो ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अपने डेढ़ सौ वर्षों के शासन में अछूतों के उद्धार के लिए किए हैं? अंग्रेज़ों के आने के पहले अछूत लोग सार्वजनिक कुओं से पानी नहीं भर सकते थे; क्या अंग्रेज़ों ने अछूतों का यह दुःख दूर कर दिया? अंग्रेज़ों के आगमन के पूर्व अछूत लोग मन्दिरों में नहीं प्रवेश कर सकते थे, क्या अब उन्हें यह अधिकार मिल गया है? अंग्रेज़ी राज्य से पूर्व अछूत लोग पुलिस में नहीं भर्ती किए जाते थे; क्या अंग्रेज़ी राज्य में वे पुलिस में भर्ती किए जाते हैं? अंग्रेज़ी शासन के पहले सेना में अछूतों का प्रवेश निषिद्ध था, क्या अंग्रेज़ी शासन में, उन्हें यह अधिकार मिल गया? नहीं! नहीं!! नहीं!!! फिर किस बात के लिए हम अंग्रेज़ी राज्य को अछूतों का हितैषी समझें? देखें, अछूत की समस्या और स्वराज, संपादकीय (1930), *चाँद* : नवंबर : 5 .

स्रोत : *सुधा* : मार्च 1929, वर्ष : 2, खंड : 2, संख्या : 2.

गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस का आयोजन लंदन में किया गया। महात्मा गांधी दूसरी गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस में भाग लेने के लिए तैयार थे। इस दूसरी गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस पर हिंदू नेताओं और लेखकों की निगाहें टिकी हुई थीं, क्योंकि इस कॉन्फ्रेंस से भारत का संघीय ढाँचे के साथ हिंदू, मुसलमानों और अछूतों का भविष्य निर्धारित होने वाला था। इस गोलमेज़-परिषद में कॉन्ग्रेस की ओर से महात्मा गांधी और डॉ. आंबेडकर अछूतों की ओर से नुमाइंदगी कर रहे थे। भारत के तत्कालीन उद्योगपति और कॉन्ग्रेस समर्थक घनश्यामदास बिड़ला फ़ेडरेशन ऑफ़ चैम्बर्स कॉमर्स ऐंड इंडस्ट्री की ओर से नुमाइंदी कर रहे थे। पंडित मदन मोहन मालवीय और श्रीमती सरोजनी नायडू भी इस कॉन्फ्रेंस में शामिल थे। मुहम्मद अली जिन्ना संघीय कमेटी के सदस्य के तौर पर गोलमेज़ सम्मेलन में शरीक हुए थे। इस दूसरी गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस में बिटिश-सदस्य कुल 14 थे। इनमें विशेष उल्लेखनीय प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनेल्ड, लार्ड सैंकी, सर सैमुअल होर, कर्नल वेजवुड बेन, अर्ल पील आदि थे।[2]

प्रथम गोलमेज़ सम्मेलन से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण दूसरी गोलमेज़ सभा थी। इस बार महात्मा गांधी कॉन्ग्रेस की ओर से नुमाइंदगी कर रहे थे। सभी प्रतिनिधियों की निगाहें उन पर

[2] नरसिंहराम शुक्ल (1932) : 51.

टिकी थी। महात्मा गांधी, पंडित मदन मोहन मालवीय, घनश्याम दास बिड़ला तथा अन्य प्रतिनिधियों के साथ 12 सितम्बर को महात्मा गांधी अपने साथियों के साथ लंदन पहुँच गए। सात सितम्बर को सेंट जेम्स पेलैस में लार्ड सैकी के सभापतित्व में गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस का सत्र आरंभ हुआ। लार्ड सैकी ने भारत के सभी दलों के प्रतिनिधियों को विश्वास दिलाते हुए अपने भाषण में इस बात पर ज़ोर दिया कि भारत में शांति और सुख की स्थापना करना एक ऐसा कार्य है, जिसके लिए जितना भी व्यक्तिगत त्याग करना पड़े, अधिक न होगा। भारत राष्ट्र-पद प्राप्त कर विश्व के सामाजिक और राजनीतिक विचारों के विकास में उचित रूप से योग देने के अपने युग-युगान्तर के स्वप्न को सफल करते हुए देखे। यही हमारी सबसे बड़ी आकांक्षा है।[3] 13 सितम्बर को महात्मा गांधी ने गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस की बैठक में भाग लिया पर मौनव्रत होने के कारण वह कुछ बोले नहीं। इसके दूसरे दिन महात्मा गांधी ने प्लेनरी सत्र में भाग लेते हुए कहा कि संघ योजना समिति में जितनी बातें हो रही हैं, वे एक भी मेरे काम की नहीं। सरकार को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वह कितना अधिकार देना चाहती है।

इस गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस में महात्मा गांधी, डॉ. आंबेडकर और मुहम्मद अली जिन्ना की मुखर आवाज़ प्रत्येक प्लेनरी सत्र में गूँज रही थी। इस पूरी कॉन्फ्रेंस में अछूतों के पृथक निर्वाचन का मुद्दा प्रमुख बनकर उभरा था। 24 सितंबर को अल्पसंख्यक प्रश्नों के उचित समाधान के लिए आगाख़ान और महात्मा गांधी के बीच सभा हुई। जिन्ना दल अपनी पिछली चौदह सूत्री माँगों पर अड़ा रहा। जिसके चलते कोई समाधान नहीं निकाला जा सका। जिन्ना यह बात अच्छी तरह महसूस कर रहे थे कि महात्मा गांधी की उपस्थिति में अल्पसंख्यक समुदाय को कुछ भी मिलने वाला नहीं है। महात्मा गांधी को लेकर जिन्ना का मत था कि 'अंग्रेज़ उन्हें उल्लू बनाएँगे और वे अंग्रेज़ों को उल्लू बनाएँगे।'[4] 2 अक्टूबर को गांधी की अध्यक्षता में एक कमेटी बैठी। इस कमेटी में डॉ. आंबेडकर ने प्रांतीय परिषद में अछूतों के लिए 15 प्रतिशत जगह सुरक्षित रखने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। डॉ. आंबेडकर जैसा प्रखर राजनीतिज्ञ और विचारक जानता था कि यदि अछूतों को पृथक निर्चाचन का अधिकार नहीं दिया गया तो अछूत राजनीतिक दृष्टि से पॉवरलेस हो जाएँगे। जब डॉ. आंबेडकर ने अपनी माँग में अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन का प्रस्ताव रखा तो गांधी दल के बीच हड़कंप मच गया। महात्मा गांधी ने अछूत पृथक निर्वाचन के प्रस्ताव को कॉन्ग्रेस के वसूलों के ख़िलाफ़ बताया। 5 अक्टूबर को अल्पसंख्यक मसले के समाधान पर फिर से बैठक हुई। इस बैठक में पृथक निवार्चन और अल्पसंख्यक मसले का कोई नतीजा नहीं निकल सका।

अल्पसंख्यक समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रधानमंत्री रेम्जे मैकडोनेल्ड को सौंप दी। इस रिपोर्ट का गांधी जी ने प्रबल विरोध किया। उन्होंने अछूतों के पृथक निर्वाचन का न सिर्फ़ विरोध किया बल्कि अछूतोद्धार का श्रेय कॉन्ग्रेस के खाते में डाल दिया। महात्मा गांधी का कहना था कि :

[3] वही : 51.

[4] स्टेनली वोलपर्ट (2009) : 185.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 315

> मैं बहुत ही असमंजस और लज्जा के साथ अल्पसंख्यकों के इस विवाद में पड़ा हुआ हूँ। मुख्य प्रश्न साम्प्रादायिक समस्या नहीं, वरन शासन-विधान है। 'कॉन्ग्रेस उस समझौते को मानने को तैयार है जो हिंदू-मुसलमान और सिक्ख आपस में तय कर लें, पर वह अन्य किसी अल्प-संख्यक समुदाय को विशेषाधिकार दिलाने की बात को स्वीकार न करेगी। मुझे दुख है कि कमेटी में एकमत नहीं हुआ। मैं फिर इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूँ कि भारतीय शासन-विधान स्थापित करने की ओर बढ़ने का अधिकार साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व साम्प्रदायिक अधिकार तथा साम्प्रदायिक संरक्षण आदि ही हैं। अतः हमें और भी दुःख है कि इसी प्रश्न को हम न सुलझा सके। अन्यान्य सम्प्रदायों के लिए जो दावे पेश किए जाते हैं उन्हें तो मैं समझता भी हूँ, पर अछूतों के लिए जो दावे पेश किए जाते हैं वे दावे अत्यंत क्रूर हैं। उन्हें स्वतंत्र निर्वाचन देने का मतलब यही है कि उन्हें सार्वजनिक हेल-मेल से रखने का प्रयत्न किया जा रहा है। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फिरूँगा। और इस बात की घोषणा करूँगा कि पृथक निर्वाचन में उनका हित नहीं है। इससे अछूतों का प्रश्न कभी भी हल नहीं हो सकता। कॉन्ग्रेस ही अछूतों का सच्चा प्रतिनिधि है। कॉन्ग्रेस ने जितना अछूतोद्धार के लिए किया है उतना और किसी ने नहीं किया है।[5]

अब कॉन्फ्रेंस में सबसे गर्म मुद्दा अछूतों के पृथक निर्वाचन का बन गया था। महात्मा गांधी ने अछूतों के पृथक निर्वाचन का विरोध करने के बाद ख़ुद को अछूतों का सबसे बड़ा हितैषी और प्रतिनिधि घोषित किया। महात्मा गांधी ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री से कहा :

> कॉन्फ्रेंस को तुमने पिट्ठुओं से भर दिया है। अगर तुम मुझे अपना प्रतिनिधि बनाकर हिंदुस्तान भेजो, तो मैं तुम्हें सौ ऐसे आदमी ला दूँ जो किसी प्रकार का समझौता न होने दे। तुम्हारी कॉन्फ्रेंस में जो अछूतों का प्रतिनिधि है, उसे किसने अपना प्रतिनिधि चुना है? मेरा दावा है कि अछूतों का सच्चा प्रतिनिधि मैं हूँ।[6]

जब अन्य प्रतिनिधि अछूत मसले पर अपनी बात रखते तो गांधी उन पर झल्ला जाते थे। गांधी जी अपने को अछूतों का मुखिया सिद्ध करने का कोई अवसर नहीं जाने देना चाहते थे। उन्होंने अछूतों का प्रतिनिधि होने का दावा किस हद तक किया था, इसका अंदाजा घनश्याम दास बिड़ला के इस कथन से लगाया जा सकता है :

> 'कोई अछूतों की सिफ़ारिश करने आता है, तो महात्मा जी गरम हो जाते हैं। और कह देते हैं कि तुमको अछूतों की क्या ख़बर! अछूतों का मुखिया तो मैं हूँ।'[7]

---

[5] वही : 59.

[6] घनश्यामदास बिड़ला (1958) : 44.

[7] वही : 73-74.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 316

गांधी जी के अछूत प्रतिनिधित्व वाले दावे से तंग आकर डॉ. आंबेडकर को गोलमेज़ सभा में कहना पड़ा कि ‘महात्मा को तो झूठा दावा करने की आदत है। छह करोड़ अछूत तो मुझे ही मानते हैं, इनको तो कोई पूछता भी नहीं हैं।’[8] सच बात यह है कि इस गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस में डॉ. आंबेडकर ही अछूतों के प्रतिनिधि थे। नतीजतन, अछूत प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हो सका। सभी प्रतिनिधियों की दलीलें सुनने के बाद प्रधानमंत्री ने कहा कि यदि भारतीय नेता इस मसले का जल्द ही निपटारा नहीं करेंगे तो अछूत और अल्पसंख्यक समुदाय के समाधान का निर्णय ब्रिटिश सरकार अपने कंधे पर ले लेगी।

2.

अब इस बात की पड़ताल की ओर बढ़ा जाए कि दूसरी गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस पर हिंदी लेखक और संपादकों का रुख और रवैया क्या था? औपनिवेशिक दौर में आयोजित इस गोलमेज़ सभा में डॉ. आंबेडकर तमाम तनाव और अवरोधों के बीच अछूतों की सामाजिक और आंतरिक समस्या को वैश्विक पटल पर उठाने में सफल रहे। हिंदी नवजागरण कालीन साहित्यिक अग्रदूतों ने अपने विमर्श में डॉ. आंबेडकर की विशेष अधिकारों की माँग को उपनिवेश विरोधी दौर में, औपनिवेशिक महकमों में लाना राष्ट्र और हिंदू विरोध के तौर पर देखा था। ऐसे संपादकों की दलील थी कि पृथक निर्वाचन की माँग अछूतों को हिंदू धर्म से तोड़कर उसकी जड़ों पर प्रहार करना है। हिंदी नवजागरणकालीन संपादकों ने गोलमेज़ सभा, लंदन की कार्यावाहियों में गहरी दिलचस्पी दिखाई थी। *सरस्वती* पत्रिका के तत्कालीन संपादक देवीदत्त शुक्ल ने गोलमेज़ सभा की विफलता का सारा ठीकरा अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों के सिर पर डाल दिया। देवीदत्त शुक्ल का दावा था कि :

> अल्प-संख्यकों के प्रतिनिधियों ने अपने-अपने सम्प्रदाय की हितरक्षा करने में यहाँ तक हठधर्मी की है कि उनकी यह मनोवृत्ति प्रधानमंत्री राम्सेमैकडोनेल्ड को भी अच्छी नहीं लगी। इसी से उन्होंने अपने भाषण में यह बात स्पष्ट कर दी है कि यदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय आपस में समझौता नहीं करेंगे तो अन्त में यह काम सरकार को करना पड़ेगा। सरकार भारत के लिए संघ शासन का जो विधान बनाना चाहती है वह अपने उस महत्त्वपूर्ण कार्य को स्थगित नहीं कर सकती और जब यह कार्य सरकार करेगी तब अधिक से अधिक वह वर्तमान अवस्था में कुछ उपयोगी सुधार करके उसे अपने अनुकूल बना लेगी। इसके सिवा वह और क्या कर सकेगी? तब न तो मुसलमानों को पंजाब और बंगाल में बहुमत प्राप्त होगा, न सौ में तीस जगहें सिक्ख पाएँगे और न हिंदुओं का संयुक्त निर्वाचन ही प्राप्त होगा। इस सांप्रदायिक दुराग्रह का यही परिणाम होगा और इससे राष्ट्रीय भावना के उन्नत होने में बाधा पड़ेगी।[9]

[8] वही : 77.

[9] संघ शासन की व्यवस्था का आयोजन, संपादकीय (1932) : 189.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 317

अछूत पृथक निर्वाचन को लेकर देवीदत्त का विचार था कि अब तक हिंदू-मुसलमानों में सिर-फुटौव्वल हो रही थी लेकिन अब हिंदुओं और अछूतों के बीच संघर्ष शुरू हो जाएगा। देवीदत्त शुक्ल को यह ख़याल नहीं रहा कि उच्च श्रेणी के हिंदू जाति और वर्ण के दंभ में सदियों से अछूतों पर अत्याचार होते आए हैं। बड़े मज़े की बात है कि देवीदत्त शुक्ल ने उच्च श्रेणी वाली जातिगत क्रूरता पर कोई भी प्रकाश नहीं डाला, उलटे पृथक निर्वाचन के मसले पर गांधी के साथ खड़े नज़र आए।

प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद (1880-1936) जितने श्रेष्ठ कथाकार थे, उतने ही श्रेष्ठ संपादक भी थे। हिंदी नवजागरण की श्रेष्ठ पत्रिकाओं में शुमार *माधुरी* का संपादन कई वर्षों तक किया था। प्रेमचंद ने साहित्य और संस्कृति को धार देने के लिए *हंस* पत्रिका निकाली थी, जिसके संपादक और प्रकाशक वे ख़ुद थे। *हंस* का प्रथम अंक मार्च,1930 को काशी से निकला था। *हंस* के संपादक रहते हुए उन्होंने जागरण जैसे श्रेष्ठ पत्र का भी संपादन किया। हिंदी पत्रकारिता का उनके पास अच्छा ख़ासा अनुभव था। प्रेमचंद ने *हंस*, अक्टूबर 1931 के अंक में गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस पर एक लंबा संपादकीय लिखा था। इस संपादकीय में उन्होंने अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों को अड़ंगेबाज और अंग्रेज़ों से दोस्ती निभाने वाले बता डाला। प्रेमचंद का कहना था कि :

> हमारे मुसलमान भाइयों ने आख़िर वह कर ही डाला, जिसकी हमें शंका थी; पर यह समझकर कि शायद युरोप के नए वातावरण में वह कुछ उदार हो जाएँ, हम उस शंका को बहलाते रहे थे। महात्मा गांधी भी यही समझकर गोलमेज़ में सम्मिलित हुए थे। अगर उन्हें यह मालूम होता, कि मुसलिम मेम्बर वहाँ अड़ंगा लगाएँगे, तो वह जाते ही क्यों। हालाँकि अभी महात्माजी निराश नहीं हुए हैं और हमारी ईश्वर से प्रार्थना है, कि उनकी आशावादिता प्रवंचना न निकले कि पर हमें संदेह अवश्य है।[10]

बड़ी दिलचस्प बात यह कि प्रेमचंद ने युरोप के वातावरण में उदार होने की अपेक्षा केवल अछूत और अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों से ही करते हैं। उन्होंने अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों के संबंध में कहा कि गोलमेज़ के मुस्लिम प्रतिनिधियों को हिंदुओं पर विश्वास नहीं है, अंग्रेज़ों पर विश्वास है। जिनसे उनका चोली-दामन का साथ है, जिनके साथ उनका भाईचारा है, उन पर उन्हें विश्वास नहीं है। अंग्रेज़ों पर उन्हें विश्वास है, जो उन पर शासन करते हैं।[11] प्रेमचंद इस गोलमेज़ सम्मेलन को सिर्फ़ गांधी के नज़रिये से देख रहे थे। वे गांधी की हर माँग को उचित ठहरने की क़वायद करते दिखाई देते हैं। वह गांधी के इस कदर वशीभूत थे कि इस संपादकीय में उन पर एक भी सवाल उठाना उचित नहीं समझा। फिर भी प्रेमचंद पर अस्मितावादी विमर्शकार यह सवाल तो करेंगे कि क्या कॉन्ग्रेस समर्थित दल को अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों पर विश्वास था? क्या गांधी पृथक निर्वाचन का विरोध कर अछूत

---

[10] प्रेमचंद (1931) : 61.

[11] वही : 61.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 318

प्रतिनिधि के समाने अड़ंगा नहीं लगा रहे थे? अछूतों के पृथक निर्वाचन का विरोध करना क्या गांधी जी की हठधर्मिता नहीं थी?

अब हम इस बात पर आते हैं कि डॉ. आंबेडकर को लेकर प्रेमचंद का नज़रिया क्या था? क्या प्रेमचंद गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस में अछूतों की माँगों का समर्थन कर रहे थे? वैसे देखा जाए तो प्रेमचंद गांधी की तरह ही अछूत पृथक निर्वाचन के विरोधी के तौर पर सामने आते हैं। हिंदी के मुख्यधारा के आलोचकों की आम समझ यह है कि प्रेमचंद प्रगतिशील विचारों के थे पर गोलमेज़ और पूना-पैक्ट पर उनके विचार देख कर लगता है कि वह दलित मसले पर बहुत प्रगतिशील नहीं थे। वह हिंदू दायरे या गांधी के विचारों में ही दलित समस्या का समाधान खोज रहे थे। लेख के आने वाले हिस्से में मेरी यह बात सिद्ध होती दिखाई देगी कि औपनिवेशिक दौर नवजागरणकालीन अग्रदूतों के विमर्श में, अछूतों के सामाजिक-आंतरिक सवाल को बहुलतावादी राजनीति के केंद्र में लाना राष्ट्र के साथ हिंदू विरोधी के तौर पर देखा गया। प्रेमचंद का तर्क था कि इस गोलमेज़-परिषद में सरकार के पिट्ठू और हिंदू विरोधियों को आमंत्रित किया गया। प्रेमचंद ने अपने संपादकीय लेख में डॉ. आंबेडकर की अछूत पृथक निर्वाचन की माँग को कॉन्ग्रेस और हिंदू वसूलों के विपरीत बताया। इनकी दलील थी कि जब तक भारत को स्वराज नहीं मिल जाता, तब तक डॉ. आंबेडकर को अछूतों के लिए विशेष अधिकार की बात नहीं करनी चाहिए थी। प्रेमचंद का मत था कि, 'अछूत भाई अभी ऊँची जातियों से बराबरी नहीं कर सकते, क्योंकि वह शिक्षा और सभ्यता में बहुत पिछड़े हुए हैं; पर क्या यह बात स्वराज हो जाने पर नहीं कहीं जा सकती। उस वक़्त अगर यहाँ की स्वराज्य सरकार उनके साथ अन्याय करती तो उन्हें शिकायत करने का, आंदोलन करने का मौक़ा था।' प्रेमचंद की दृष्टि में डॉ. आंबेडकर पृथक निर्वाचन माँगकर हिंदुओं के दुश्मनों का साथ दे रहे थे। प्रेमचंद ने अपना अभिमत प्रकट करते हुए लिखा था कि :

> 'इस वक़्त तो वह पृथकता का राग अलाप कर हमारे शत्रुओं का साथ दे रहे हैं। हिंदू अब इतने नादान नहीं हैं, कि वह अपने ही देह के एक अंग को अपंग करके संसार में अपना अस्तित्व बनाए रखने का स्वप्न देख सकें। हजारों साल की ग़ुलामी ने अब उन्हें सुझा दिया है, कि अपने ही कुछ भाइयों को नीच बनाकर उन्होंने अपना ही जीवन संकट में डाल लिया है, और उनका उद्धार अब इसी में है, कि उन भाइयों को बराबर के अधिकार दें और उन्हें वास्तव में अपना भाई समझें। वे दिन अगर इस वक़्त डॉक्टर साहब ने मुसलमानों, ईसाइयों, एंग्लो इंडियनों के साथ विशेष अधिकार पर ज़ोर दिया, तो यह राष्ट्र क्या होगा, लड़ैतियों का अखाड़ा होगा। भारत का उद्धार इसी में है कि हम राष्ट्र-धर्म के उपासक बनें, विशेष अधिकारों के लिए न लड़कर, समान अधिकारों के लिए लड़ें।'[12]

डॉ. आंबेडकर का अछूतों के लिए राजनीतिक अधिकार माँगना प्रेमचंद की दृष्टि में असज्जनता प्रकट करना था। प्रेमचंद ने गांधी जी की पक्षधरता में लिखा कि :

[12] वही : 62.

हिंदू-जागृति

स्रोत : *सरस्वती* , जून 1931, खंड : 1, संख्या : 6, भाग : 32 : 774.

> क्या यह समझने के लिए किसी सूक्ष्म बुद्धि की ज़रूरत है कि नौकरशाही ने यह चुनाव इसी इरादे से किया था कि गोलमेज़ में विघ्न पड़े और कोई बात तय न हो सके। पर महात्मा जी ने यह कह दिया, तो सभी भन्ना उठे। सर शफ़ी गरज उठे, मैकडोनल्ड साहब तड़प उठे, यहाँ तक कि अछूतों के प्रतिनिधि कहलाने वाले डॉ. आंबेडकर भी चीख पड़े। एक अमेरिकन पत्र के संवाददाता ने तो यहाँ तक लिखा, कि मुसलिम और अन्य अल्पमतों के नेता महात्मा गांधी से विरोध भी करते हैं, तो सम्मान के साथ, पर डॉ. आंबेडकर तो असज्जनता कर बैठते हैं। क्यों न हो! हिंदुओं से बदला लेने का इससे अच्छा कौन-सा अवसर आवेगा। अंग्रेज़ जाति उनका उद्धार करने पर आमादा हो गई है। हिंदुओं से सारी पुरानी कसर आज ही निकाल लो।[13]

प्रेमचंद आगे डॉ. आंबेडकर को आदेश देने की मुद्रा में लिखते हैं कि :

> डॉक्टर साहब (आंबेडकर) तो विद्वान आदमी हैं, क्या वह यह नहीं जानते, कि विजेताओं ने हमेशा कमज़ोरों को दबाया है, यहाँ तक कि वही अंग्रेज़ जाति जिन्हें वह अपना उद्धारक समझ रहे हैं।[14]

---

[13] वही : 62.

[14] वही : 62.

प्रेमचंद ने डॉ. आंबेडकर को हिंदू विरोधी सिद्ध करने की क़वायद में भूल गए कि यदि हिंदुओं ने अछूतों को सामाजिक और राजनीतिक अधिकार दिया होता; तो डॉ. आंबेडकर को अंग्रेज़ों से अधिकार क्यों माँगने पड़ते? फिर, गांधी भी तो हिंदुओं के लिए अंग्रेज़ों से ही अधिकार माँग रहे थे।

3.

गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस की समाप्ति के कुछ महीनों बाद ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्जे मैक्डोनल ने अछूतों को पृथक निर्वाचन का अधिकर दे दिया। इसे लेकर हिंदू नेताओं और लेखकों के बीच हड़कंप सा मच गया। हिंदी के संपादकों ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्जे मैक्डोनल के पृथक निर्वाचन वाले फ़ैसले का ज़ोरदार विरोध किया। *माधुरी* संपादक मातादीन शुक्ल ने अछूतों के पृथक निर्वाचन वाले फ़ैसले को राष्ट्र विरोधी और हिंदुओं में विभेद पैदा करने वाला क़रार दिया। इस संपादक की दृष्टि में अछूत पृथक निर्वाचन का फ़ैसला हिंदुओं के लिए बड़ा ही घातक साबित होगा। *माधुरी* के संपादक ने अछूत पृथक निर्वाचन को हिंदुओं के साथ अन्याय के तौर पर रेखांकित करते हुए संपादकीय में लिखा :

> भारत के अभाग्य के कारण जो सुयोग शासकों को प्राप्त हुआ उसका उन्होंने वही उपयोग किया, जैसा वे सदा से करते आए हैं। इसमें हिंदू जाति के लिए सबसे हानिकर बात यह की गई कि लगभग 7 करोड़ अछूतों को पृथक-निर्वाचन दिया गया। इसके यह अर्थ स्पष्ट होते हैं कि वे लोग हिंदुओं से अलग कर दिए गए। देखने में यह बात चाहे साधारण सी ही जान पड़ेगी, लेकिन इसका फल महान् विषाक्त है। और हिंदू जाति का कोई भी शुभ चिंतक इसे अच्छी दृष्टि से नहीं देख सकता। इसके अतिरिक्त प्रांतों में हिंदुओं के साथ सीटें देने में जो अन्याय हुआ है, के बारे में कहना व्यर्थ है।[15]

दरअसल,अछूत पृथक निर्वाचन सामाजिक और राजनीतिक हलक़ों में अछूतों के अधिकार और अस्मिता का सबसे बड़ा औज़ार था। उच्च श्रेणी की मानसिकता वाले हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादक और लेखक नहीं चाहते थे कि अछूतों को किसी तरह के विशेष सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त हों। *माधुरी* के संपादक ने कहा कि उच्च श्रेणी के हिंदू पृथक निर्वाचन जैसी मुसीबत सहन नहीं कर सकते हैं। क्योंकि पृथक निर्वाचन के हवाले से अछूतों को हिंदू धर्म से तोड़ा जा रहा है। इस तरह की सोच रखने वाले संपादकों और लेखकों को भय था कि यदि अछूतों को विशेष राजनीतिक अधिकार हासिल हो गए, तो उनकी सेवा और ग़ुलामी कौन करेगा। कहीं अछूत उनके हाथों से निकल गए तो हिंदू धर्म बलशाली कैसे कहा जाएगा। यहाँ तक हिंदी संपादकों ने अछूत

[15] अछूत समस्या, संपादकीय (तुलसी संवत 1986) *माधुरी, कार्तिक* : 252.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 321

पृथक निर्वाचन को हिंदू जाति के 'विनाशक' के तौर पर देखा। *माधुरी* संपादक ने अपने संपादकीय में लिखा :

> अछूतों के पृथक् निर्वाचन की समस्या ने तो अखिल भारतीय रूप धारण कर लिया है। हिंदू जाति के हितैषी इस प्रहार को सहने के लिए तैयार नहीं हैं, जो उनकी जाति को विभक्त और नष्ट कर देने के लिए किया गया है। महात्माजी तो इस प्रश्न से इतने दुःखित और विचलित हो उठे हैं कि अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी है। उनका कहना है कि हिंदू-जाति का ऐसा विनाश द्वार वे अपनी आँखों नहीं देखना चाहते। जिन अछूतों के उद्धार के लिए उन्होंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग अर्पण किया है उनको वे हिंदू-जाति से पृथक होते क्षण भर भी नहीं देख सकते। राष्ट्र के सामने बड़ी कठिन समस्या है। प्रयत्न हो रहे हैं और सफलता की आशा भी है। अब तक जो समाचार मिले हैं, उनसे यही ध्वनि निकलती है कि वर्तमान संकट तो समझौता होकर टल सकता है।[16]

माधुरी ने अछूत पृथक निर्वाचन के पीछे हिंदुओं की जातिवादी मानसिकता को ज़िम्मेदार माना था। इसके संपादक का कहना था कि कुलीन वर्ग अपने माथे में जाति और धर्म का टीका लगाकर चलता है। इस जातिवादी टीके के चलते हिंदुओं पर पृथक निर्वाचन जैसी भरी आफ़त आ पड़ी है। पृथक निर्वाचन जैसी मुसीबत को टालने के लिए *माधुरी* के संपादक का सुझाव था कि, हिंदू-जाति के सिर पर अछूतों का कलंक बहुत काल से लगा हुआ है और जब तक उच्च जाति के हिंदू सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त करके अपने बिछुड़े हुए भाइयों को गले से नहीं लगाते, तब तक क्षणिक अभिनय से कोई लाभ नहीं है। मिस्टर आसफ़ अली के शब्दों में यही कहना ठीक होगा कि पत्थर के मंदिर या कुएँ खोल देने से तब तक कोई लाभ नहीं, जब तक हिंदू लोग अपने हृदय अछूतों के लिए न खोल दें।[17]

4.

'अछूतों के पृथक निर्वाचन की कल्पना से ही उच्च श्रेणी के हिंदुओं का हृदय काँप उठा था। महात्मा गांधी ने इस संकट को टालने के लिए पृथक निर्वाचन के विरुद्ध आमरण अनशन की भीष्म-प्रतिज्ञा की घोषणा कर डाली। महात्मा गांधी ने अछूत पृथक निर्वाचन के विरोध में 20 सितंबर 1932 को यरवदा जेल में दोपहर के बाद उपवास आरंभ कर दिया। यह गांधी जी का आठवाँ उपवास था। इसके पहले गांधी जी ने सातवाँ उपवास 1925 में सत्याग्रह आश्रम में एक कंलकी घटना को लेकर किया था। अब इस बात की पड़ताल करना उचित रहेगा कि गांधी जी के इस आमरण अनशन पर हिंदी नवजागरणकालीन कुलीन अग्रदूतों का नज़रिया क्या था? नवजागरणकालीन सुधारक पंडित मदन मोहन मालवीय, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, बाबू

[16] वही : 252.

[17] वही.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 322

भगवान दास, श्रीरामगोपालाचार्य, हरिविलाश शारदा, डॉ. मुंजे, घनश्यामदास बिड़ला, पी. बालू और तेजबहादुर सप्रू सरीखे सुधारक और नेता गांधी के समर्थन में खड़े नज़र आए। पंडित मदन मोहन मालवीय का तर्क था कि गांधी जी से बढ़कर अछूतोद्धार का बीड़ा किसी ने नहीं उठाया। पंडित मदन मोहन मालवीय की यह मनोवृत्ति न सिर्फ़ अछूत नेताओं के कार्यों की अनदेखी करती बल्कि अछूतोद्धार का श्रेय गांधी, के खाते में डाल देती है। पंडित मालवीय जी का विचार था कि महात्मा गांधी अछूत पृथक निर्वाचन के हवाले से अछूतों और हिंदुओं के बीच जो चौड़ी खाई खोदने की नींव डाली जा रही है, उसके विरुद्ध वे अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार हैं। गांधी जी के समर्थन में मालवीय जी ने कहा कि :

> कोई हिंदू ऐसा नहीं है, जिसने अछूतोद्धार के लिए महात्मा गांधी से बढ़ कर उद्योग किया हो। वे प्रायः कहा करते हैं कि पृथक चुनाव का अधिकार अछूतों और ऊँची जाति के हिंदुओं – दोनों के लिए समान रूप से, हानिकारक है। अपने इस विश्वास का प्रत्यक्ष प्रमाण उन्होंने इस निर्णय द्वारा दिया है कि अछूत जातियों को पृथक करने और उनके तथा ऊँची जाति के हिंदुओं के बीच गहरी खाई खोदने के प्रतिकार में वे अपने प्राण दे देंगे। यह दुःख का विषय है कि अछूतों के प्रतिनिधित्व के विषय में हम आपस में समझौता नहीं कर सके। पर यदि इस अवसर पर इस महान हानि को देखते हुए भी अछूतों और अन्य हिंदुओं के नेता इस प्रश्न का निबटारा न कर सकें, तो यह एक महान राष्ट्रीय दुर्घटना और लज्जा की बात होगी।[18]

बाबू राजेंद्र प्रसाद ने इस अछूत पृथक निर्वाचन को हिंदुओं की कठिन परीक्षा क़रार दिया। इस सुधारक का कहना था कि अगर गांधी जी के प्राणों को बचाने का एक ही उपाय है कि अछूत समस्या का प्रश्न हल कर; ब्रिटिश सरकार पर संयुक्त निर्वाचन का दबाव बनाना होगा। तभी गांधी जी के प्राणों की रक्षा हो सकेगी। इस पृथक निर्वाचन के विकट संकट से निकलने के लिए बाबू राजेंद्र प्रसाद का सुझाव था कि अछूतों को मंदिर प्रवेश, और कुओं से पानी भरने का अधिकार देकर इस राष्ट्रव्यापी मुसीबत से बचा जा सकता है। गांधी जी के आमरण अनशन पर बाबू राजेंद्र प्रसाद ने *चाँद* पत्रिका से कहा :

> अगर भारत और संसार के लिए महात्मा जी के प्राणों की रक्षा करनी है, तो हिंदू-समाज को अछूत-समस्या को हल करना पड़ेगा। इस प्रश्न के सामाजिक धार्मिक दो पहलू हैं। हिंदुओं को साहसपूर्वक यह कार्य हाथ में लेना चाहिए और हिंदू-धर्म पर से इस धब्बे को मिटा देना चाहिए। अछूत कहे जाने वालों को मन्दिरों में दर्शन करने, कुओं से पानी भरने, स्कूली शिक्षा प्राप्त करने और सड़कों पर चलने आदि का अधिकार दिया जाना चाहिए। इस प्रश्न का हल करना एकमात्र हिंदू जाति के ही हाथ में है। यह कार्य ऐसे ढंग से होना चाहिए, जिससे असंदिग्ध रूप से प्रकट हो जाए कि अछूत कहे जाने वाले किसी तरह हिंदुओं से भिन्न नहीं

[18] मदन मोहन मालवीय, *चाँद, अक्टूबर* (1932) : 687.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 323

हिंदू धर्म की छुआछूत

स्रोत : *विश्वमित्र*, जनवरी 1933

> हैं। यह हिंदू जाति की परीक्षा का समय है और यदि उसमें जीवन है तो उसे कोई महान और दर्शनीय कार्य कर दिखलाना चाहिए।[19]

औपनिवेशिक भारत के महान सुधारक डॉ. भगवान दास अछूत के पृथक निर्वाचन के समर्थक नहीं थे। इनकी शंका थी कि अछूत पृथक निर्वाचन से हिंदू समाज के दो फाड़ हो जाएँगे। भगवान दास का कहना था कि हिंदू समाज के एक बड़े अंग को अछूत और दलित कहने की चाल चल पड़ी है। पर, अपने को उच्च श्रेणी कहलाने वाले कौन से व्यक्ति अछूत और पद-दलित नहीं हैं। जिस देश में स्वराज्य नहीं है, वहाँ का प्रत्येक नागरिक पद-दलित ही रहे हैं। डॉ. भगवानदास अपने तर्क में इस बात को भूल गए कि अछूतों के साथ जो अत्याचार होता है। वह क्या उच्च श्रेणी के हिंदुओं के साथ हुआ? इस विचारक का दावा था कि महात्मा गांधी का आमरण अनशन ही हिंदू समाज को खंडित होने से बचा सकता है। महात्मा गांधी आमरण अनशन पर डॉ. भगवान दास का विचार था कि इस महाभेदबुद्धि, दुर्बुद्धि का परिमार्जन हुए बिना भारतवर्ष का जीर्णोद्धार यथा संभव नहीं है। और इस परिमार्जन का और कोई उपाय नहीं, सिवाय इसके कि महात्मा जी के ऐसा महापुरुष ऐसे आत्यंतिक अनशन का व्रत लेकर सब हिंदू कहलाने वालों के हृदय में आग लगा दें, जिससे दुर्भाव भेद-भाव जल जाएँ, और भेदभाव सजाव का सोना रह जाए। यदि हिंदू समाज ने अपने भीतर की इस छूत-अछूत की फूट को मिटा दिया, तो और सब फूटों को यह सहज में मिटा लेगा, और बाद में

[19] बाबू राजेंद्र प्रसाद, *चाँद, अक्टूबर* (1932) : 687.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 324

हिंदू समाज के और दूसरे नाम वाले समाजों के भेद और फूट को मिटा ले सकेगा, और तब मानव-समाज का सुंदर रूप अवतार लेगा। यदि यह न भया समाज भी नहीं रहेगा।[20] श्री रंगा अय्यर ने अछूत पृथक निर्वाचन को हिंदू जाति और धर्म में फूट डालने वाले अमिट धब्बे के तौर पर देखा था। महात्मा जी ने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर ब्रिटिश सरकार के इस विभेदकारी निर्णय के विरुद्ध आमरण अनशन की भीषण प्रतिज्ञा की है। इस सुधारक का यह भी कहना था कि यदि गांधी जी जीवित हैं तो सब जीवित हैं। यदि इस अनशन के दौरान गांधी जी की मृत्यु कहीं हो गई तो भारत और इंग्लैंड के संबंधों की मृत्यु होना निश्चित है। श्री रंगा अय्यर ने गांधी जी के आमरण अनशन की पक्षधरता में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि :

> महात्मा जी ने जिस निर्णय के विरुद्ध विद्रोह किया है, वह हमारे धर्म और जाति में फूट डालने वाला और हमारे धर्म पर एक अमिट धब्बा लगाने वाला है। महात्मा जी ने अपने प्राण देकर इस निर्णय का विरोध करने की प्रतिज्ञा की है। अगर गांधी जी जीवित रहेंगे तो सब जीवित हैं और यदि वे मरते हैं तो शेष लोगों को भी मृत समझना चाहिए। उन्होंने इसलिए अपने प्राण देने का निश्चय किया है, जिससे अछूत लोग जीवित रह सकें। एक विदेशी जाति का प्रधानमंत्री, जिसके विचार और दृष्टिकोण भिन्न हैं और जिसकी बुद्धि भी परिमित है, इस भेद-भाव उत्पन्न करने वाले निर्णय का औचित्य सिद्ध करता है। इस विष का प्रवेश बीस वर्ष के लिए कराया जा रहा है, जिससे हमारा धर्म, हमारे देवता और हमारी जाति के ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लाभ के लिए टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ। क्या प्रधानमंत्री अछूतों के संबंध में महात्मा गांधी की अपेक्षा अधिक ज्ञान रखते हैं?[21]

घनश्याम दास बिड़ला अछूतोद्धार समिति के प्रमुख थे। और, दूसरी गोलमेज़ सभा में शरीक भी हुए थे। इनका कहना था कि अछूत पृथक निर्वाचन ने बड़ी भीषण स्थिति पैदा कर दी है। इन्होंने दावा किया कि गांधी से बड़ा अछूतों का शुभचिंतक कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। इस सुधारक का यह भी दावा था कि यदि जनमत संग्रह कराया जाए तो 99 प्रतिशत अछूत गांधी जी को अपने नेता मानते हैं। इनका हवा-हवाई मत था कि गांधी ही अछूतों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। गांधी के आमरण अनशन पर इनका विचार था कि, निस्सन्देह हमारे सामने बड़ी भयंकर परिस्थिति उत्पन्न हुई है, पर ईश्वरेच्छा से बदी से भी नेकी उत्पन्न होना संभव है। ...अछूतों का कर्तव्य स्पष्ट है। गांधी जी से बढ़ कर उनका शुभचिन्तक कौन है? चाहे इंलैण्ड वाले इस बात को न जानते हों, पर भारत में कोई भी गांधी जी के अछूतों का असली प्रतिनिधि होने से इन्कार नहीं कर सकता। अगर जनमत ग्रहण किया जाए, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि 99 प्रति सैकड़ा अछूत गांधी जी के पक्ष में राय देंगे।[22]

---

[20] बाबू भगवान दास, *चाँद, अक्टूबर* (1932) : 688.

[21] श्री रंगा अय्यर एम. एल. ए., *चाँद, अक्टूबर* (1932) : 688.

[22] श्री घनश्यामदास बिड़ला, *चाँद, अक्टूबर* (1932) : 690.

जहाँ सवर्ण अग्रदूत हिंदूवाद की रक्षा के लिए अछूत पृथक निर्वाचन का विरोध कर रहे थे, वहीं कुछ अछूत नेता भी गांधी के आमरण अनशन के समर्थन में खड़े दिखाई दिए। रावबहादुर एम.सी. राजा अछूत नेता थे। यह अखिल भारत वर्षीय अछूत एसोसिएशन के सभापति भी थे। अछूत पृथक निर्वाचन को लेकर इनका कहना था कि हिंदू व्यवस्था में दलित सामाजिक तौर पर अछूत थे पर ब्रिटिश सरकार के पृथक निर्वाचन ने अछूतों को राजनीतिक तौर पर अछूत बना दिया है। इनका मत था कि गांधी ने संयुक्त निर्वाचन का मुद्दा उठाकर सब का ध्यान अछूतों की ओर आकर्षित किया है। गांधी जी समस्त हिंदुओं के लिए संयुक्त निर्वाचन की माँग करते हैं पर अछूतों की संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व के हामी भी हैं। रावबहादुर एम.सी. राजा पृथक निर्वाचन के मुद्दे पर अपनी राय प्रकट करते हुए कहा था :

> हम ब्रिटिश सरकार से सहायता की आशा रखते थे, पर राउंडटेबिल कॉन्फ्रेंस ने हमारी आशाओं पर पानी फेर दिया और प्रधानमंत्री के निर्णय के पश्चात् हमको ऐसा प्रतीत होने लगा कि हमारे हित को ऐसा धक्का लगा है, जिसका प्रतिकार हो सकना संभव है। अगर हिंदुओं ने हमको सामाजिक दृष्टि से बिना रक्खा था जो अंग्रेज़ी सरकार ने राजनीतिक दृष्टि से अछूत बना दिया। गांधी जी समस्त हिंदुओं के लिए संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था चाहते हैं और अछूतों को उनकी संख्या के हिसाब से अधिक प्रतिनिधित्व का अधिकार देने को तैयार है। ...मेरा विश्वास है कि हमारी जाति का प्रत्येक व्यक्ति इस बात के लिए गांधी जी का कृतज्ञ होगा कि उन्होंने इस प्रश्न को उठाया और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि समस्त संसार का ध्यान इस ओर आकर्षित होगा।[23]

औपनिवेशिक भारत के अछूत क्रिकेटर पी. बालू ने आमरण अनशन के मुद्दे पर गांधी जी का पक्ष लिया था। वह भले अछूत थे लेकिन गांधी के आमरण अनशन का पूरा समर्थन किया था। पी. बालू का मानना था कि गांधी का आमरण अनशन कोरी धमकी नहीं है। यह आमरण अनशन गांधी अछूत समाज की सहायता करने के लिए कर रहे हैं। पृथक निर्वाचन वाले आमरण अनशन पर पी. बालू का मत था कि,महात्मा गांधी ने जिस उद्देश्य से अछूतों के लिए अपने प्राण अर्पित कर देने की घोषणा की है, उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ। महात्मा गांधी का यह निर्णय कोरी धमकी नहीं है। इससे प्रकट होता है कि उनके हृदय में अछूतों की सहायता की अभिलाषा कहाँ तक मौजूद है।[24]

5.

अब इस पड़ताल की ओर बढ़ा जाए कि जब गांधी जी ने अछूत पृथक निर्वाचन के विरोध में यरवदा जेल में आमरण अनशन आंरभ किया तो हिंदी के लेखकों और संपादकों का नज़रिया

---

[23] रावबहादुर एम.सी. राजा, *चाँद, अक्टूबर* (1932) : 690.

[24] श्री पी. बालू, *चाँद, अक्टूबर* (1932) : 691.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 326

क्या था? इस अछूत पृथक निर्वाचन के मसले पर सवर्ण अग्रदूतों से हिंदी लेखकों की राय ज़ुदा नहीं थी। हिंदी लेखक और संपादक गांधी जी के पक्ष में खड़े दिखाई दिए। ऐसे हिंदी संपादकों ने गांधी के आमरण अनशन को 'भीषण-प्रतिज्ञा', 'भीष्म प्रतिज्ञा','महानत-तप' और 'महाव्रत' बताया था। *सरस्वती* पत्रिका के संपादक ने गांधी जी के आमरण अनशन पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा कि :

> अल्पसंख्यकों के संबंध में जो निर्णय प्रधानमंत्री मिस्टर राम्से मैकडोनल्ड ने किया है उसमें अन्य अल्पसंख्यकों के साथ-साथ अछूतों को भी निर्वाचन का अधिकार दिया गया है। यद्यपि इस निर्णय का विरोध देश में प्रायः एक-स्वर से किया गया है, तथापि इस निर्णय से यरवदा-जेल में बन्दी महात्मा गांधी को ऐसी मार्मिक वेदना हुई है कि उन्होंने उसे रद्द कराने के लिए आमरण निराहार रहने की घोषणा की है। महात्माजी का कहना है कि पृथक निर्वाचन से अछूत सदा के लिए हिंदू-जाति से अलग होते जाएँगे। और यह बात राष्ट्र के हित की विघातक होगी। उन्हें इस व्यवस्था में हिंदू-जाति का भविष्य भयपूर्ण दिखाई दिया, अतएव उसकी रक्षा के लिए उन्होंने अपने आपको बलिदान कर देने का निश्चय किया। उन्होंने कहा है कि अछूत लोग अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए और जो चाहें अधिकार ले लें, पर पृथक निर्वाचन स्वीकार कर हिंदू-जाति से अलग न हों, नहीं तो वे निराहार रहकर अपने प्राण दे देंगे। बस, महात्माजी की उक्त भीषण प्रतिज्ञा का समग्र हिंदू जाति पर जो आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा है उससे उसके मनोभाव में विलक्षण परिवर्तन हुआ है। व्रत प्रारंभ करने की बात के प्रकट होते ही सारा भारत हिल गया और कोई तीन दिन के भीतर ही एक मदरास और आसाम को छोड़ कर सभी प्रांतों के सभी प्रधान स्थानों में अपने आप ही छोटी-बड़ी तरह-तरह की अनेक सभाएँ हो गईं और अछूतों को साग्रह बुलाकर उनका अछूतपन दूर किया गया।[25]

हिंदी नवजागरणकालीन अधिकांश संपादक और लेखक गांधी को अछूतों का सर्वश्रेष्ठ सुधारक सिद्ध करने की क़वायद में जुट गए। हिंदी संपादकों ने अछूतों को यह दिवास्वप्न दिखाया कि अछूतों का भला सिर्फ़ संयुक्त निर्वाचन के भीतर ही निहित है। गांधी जी के आमरण अनशन पर हिंदी लेखकों और संपादकों ने डॉ. आंबेडकर के विरुद्ध अपनी पत्र-पत्रिकाओं में मोर्चा खोल दिया था। नवजागरणकालीन हिंदी साहित्य के अग्रदूतों ने डॉ. आंबेडकर की पृथक निर्वाचन की माँग को हिंदुओं के विरुद्ध साजिश क़रार दिया। *चाँद* के संपादक ने डॉ. आंबेडकर का विरोध करते हुए लिखा कि :

> महात्मा गांधी के उपवास के फल-स्वरूप देश भर में अछूतों के पृथक निर्वाचन के संबंध में जो चर्चा चल पड़ी है, उससे भी यह पता चलता है कि अछूतों के पृथक निर्वाचन के प्रधान समर्थक डॉ. आंबेडकर के पीछे कोई बड़ी सम्पत्ति और प्रभाव रखने वाली शक्ति है, जिसका उद्देश्य है अछूतों के इस प्रकार हिंदुओं से पृथक हो जाने पर उन्हें अपने में मिला लेना। यह

[25] महात्मा गांधी और अछूतोद्धार, सामयिक प्रसंग, सरस्वती, अक्टूबर (1932) : 477.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 327

> बतलाना अनावश्यक है कि उक्त बयान में जिस शक्ति की तरफ़ इशारा किया गया है, वह मुसलमानों की है।[26]

चाँद के संपादकीय में इस बात पर बल दिया गया कि अछूतों का उद्धार सिर्फ़ संयुक्त निर्वाचन में है। *चाँद* के संपादक ने गांधी का समर्थन और डॉ. आंबेडकर का विरोध करते हुए लिखा कि गांधी की महान प्रतिज्ञा ने देश को बिजली का सा धक्का पहुँचाया और उससे व्यथित होकर छूत और अछूत सभी जातियों के हिंदू-नेता इस प्रश्न के निर्णय में संलग्न हो गए। देश भर के अछूत-नेताओं ने महात्मा गांधी के कथन को सत्य बतलाया और संयुक्त निर्वाचन का समर्थन किया। इस एक सप्ताह के भीतर सैकड़ों व्यक्तियों की रायें जिनमें बीसियों प्रमुख अछूत कार्यकर्त्ता हैं – समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुईं, पर उनमें से एक भी डॉ. आंबेडकर को छोड़कर संयुक्त निर्वाचन के विरोध में नहीं थी। अछूतों की जो सार्वजनिक सभाएँ देश भर में की गईं, उनमें भी किसी ने इसका विरोध नहीं किया। क्या इन बातों से सिद्ध नहीं होता कि भारत के अछूत ऊँची जाति के हिंदुओं के अन्यायों को सहते हुए भी उनसे पृथक् होना अपने लिए लाभ जनक नहीं समझते, वरन् उनके साथ रह कर ही अपने अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं।[27]

कथाकार प्रेमचंद ने गांधी के इस आमरण अनशन को 'महान् तप' और 'अभूतपूर्व' तपस्या बताया था। प्रेमचंद का दावा था कि अछूतों की प्रगति का मूलमंत्र संयुक्त निर्वाचन है। गांधी जी के आमरण अनशन पर प्रेमचंद का मत था :

> कल यरवदा जेल में वह महान् तप आरम्भ होगा, जिसकी कल्पना से ही रोमांच हो जाता है। भारत की तपोभूमि में इससे पहले भी बड़ी-बड़ी कठिन तपस्याएँ की गई हैं, लेकिन यह तपस्या अभूतपूर्व है। भारत के इतिहास में ही नहीं, संसार के इतिहास में भी इसकी नज़ीर न मिल सकेगी। जान के लिए, मोक्ष के लिए, प्रभुता के लिए, औरों ने भी तप किए हैं, पर राष्ट्र के लिए प्राणों की आहुति देने का संकल्प महात्मा गांधी ही की कीर्ति है। वह सेवा-यज्ञ जो आज से चालीस वर्ष पहले दक्षिण अफ्रीका में हुआ था, उसकी यह पूर्णाहुति है। धन्य हो महात्मा! राष्ट्र की सेवा में तुम पहले ही अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे। एक प्राण ही रह गया था। उसे भी राष्ट्र ही की भेंट करने जा रहे हो।[28]

प्रेमचंद गांधी जी को अछूतों का सबसे बड़ा उद्धारक सिद्ध करने का उपक्रम करते नज़र आए। इसी क़वायद में उन्होंने पृथक निर्वाचन का विरोध तो किया ही, साथ में गांधी जी को अछूतों का सबसे बड़ा उद्धारक सिद्ध कर डाला। प्रेमचंद लिखते हैं कि :

---

[26] संपादकीय, *रंगभूमि, चाँद,* अक्टूबर (1932) : 699.

[27] वही : 699.

[28] *प्रेमचंद रचनावाली,* खंड आठ (1932) : 133.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 328

हंस : अगस्त, 1933 का कवर पृष्ठ

हंस : अप्रैल, 1933 का कवर पृष्ठ

> हिंदू-समाज के लिए निर्वाचन की जितनी कड़ी शर्तें चाहे लगा दो, पर अछूतों को हिंदुओं से अलग न करो, क्योंकि इससे केवल हिंदू समाज की ही क्षति न होगी, अछूतों का अस्तित्व ही न रहेगा। हम कल्पना नहीं कर सकते कि इससे ज़्यादा न्याय और क्या किया जा सकता है। ऐसा विचार उसी आत्मा से निकल सकता है, जो अछूतों की सेवा चिंतन करते-करते स्वयं अछूत भावना से ओत-प्रोत हो गया है। हम किसी ऐसे दूसरे व्यक्ति का नाम नहीं जानते, जिसने इस एकाग्रता, इस प्रेम और इस उत्साह से दलित-समाज की सेवा की हो। महात्मा उन व्यक्तियों में से हैं, जो दलितों के उद्धार में ही हिंदू जाति के उत्थान और उत्कर्ष का रहस्य छिपा हुआ देखते हैं, जो हिंदू जाति के मुख से अन्याय के इस कलंक को मिटा देने के लिए अपने प्राणों को भी अर्पण कर देने को तैयार रहते हैं।[29]

इसके बाद प्रेमचंद शूद्रों को हिंदू धर्म का पाँव बताते हैं –

> भारतीय राष्ट्र का आदर्श मानव शरीर है जिसके मुँह, हाथ, उदर और पाँव ये चार अंग हैं। इनमें से किसी एक अंग के विच्छेद हो जाने से देह अपंग या निर्जीव हो जाएगी। हमारे शूद्र भाई इस देह रूपी राष्ट्र के पाँव ही कट जाएँ, तो देह की क्या गति होगी?[30]

---

[29] वही : 134.

[30] वही : 133.

प्रेमचंद जाने-अनजाने में वर्ण-व्यवस्था का समर्थन कर रहे थे। प्रेमचंद कथाकर थे। वे अपनी कल्पना में कोई दूसरा रूपक बाँध सकते थे लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। प्रेमचंद इस संपादकीय में डॉ. आंबेडकर से गांधी के लिए याचना करते हैं :

> हमें विश्वास है डॉ. आंबेडकर और मि. श्रीनिवासन् भी राष्ट्र की इस याचना को अस्वीकार न करेंगे। हमारी नौका को भँवर से निकालकर पार ले जाने वाला अकेला गांधी है। उसी में वह सामर्थ्य है, वह देवत्व है, वह ऐश्वर्य है। हमें विश्वास है यह ईश्वर के दरबार से हमारे उद्धार का बीड़ा लेकर आया है, हम उस दिन का इन्तजार कर रहे हैं, जब वह स्वाधीनता का वरदान लाकर जीर्ण और निराश माता की भेंट करेगा। क्या सामर्थ्यवान भी गांधी विधि की इस गति को टाल सकता है? नहीं, नहीं नहीं।

यह बड़ी दिलचस्प बात है कि जब पूना-पैक्ट हो गया और डॉ. आंबेडकर ने संयुक्त निर्वाचन स्वीकार कर लिया तो जश्न में एक साल बाद प्रेमचंद ने *हंस* के कवर पृष्ठ पर डॉ. आंबेडकर का चित्र छापा था। मैंने तमाम पुस्तकालयों की ख़ाक छानने के बाद *हंस* का वह अंक खोजा, जिसके कवर पृष्ठ पर डॉ. आंबेडकर का चित्र छपा था और अपनी फेसबुक आईडी से इस कवर पेज़ को पोस्ट कर दिया। जहाँ से यह कवर पेज़ काफ़ी वायरल भी हुआ। प्रेमचंद ने *हंस*, अगस्त 1933 के अंक में कवर पृष्ठ पर डॉ. आंबेडकर का चित्र ज़रूर छापा था पर हंस के भीतर उन पर एक शब्द भी नहीं लिखा था। जबकि इसके पहले प्रेमचंद ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की 70वीं वर्षगांठ पर *हंस*, अप्रैल 1933 के अंक में पूरे कवर पृष्ठ पर महावीर प्रसाद द्विवेदी का चित्र छापा था। प्रेमचंद ने केवल चित्र ही नहीं छापा बल्कि *हंस* के इस अंक में प्रचुर मात्रा में उन पर सामग्री भी थी और ख़ुद प्रेमचंद ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान पर संपादकीय भी लिखा था। कहने का अर्थ है कि प्रेमचंद को डॉ. आंबेडकर की फ़ोटो तो स्वीकार थी पर उन्हें गांधी के सामने अछूतोद्धार का श्रेय देने की हिचक थी।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' हिंदी नवजागरण के प्रसिद्ध कथाकार और संपादक थे। चाँद, *माधुरी, सरस्वती*, *मनोरमा* आदि नवगाजरणकालीन पत्रिकाओं के स्टार लेखक थे। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की तमाम कहानियाँ हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की एक ख़ूबी यह भी थी कि वह विजयानंद दुबे के छद्म नाम से भी लिखते थे।[31] विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' *चाँद* पत्रिका में 'दुबे जी की चिट्ठी' नामक कॉलम विजयानंद दुबे के नाम से लिखा करते थे। जब गांधी जी ने पृथक निर्वाचन के विरोध में आमरण अनशन किया तो विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने विजयानंद दुबे के नाम से डॉ. आंबेडकर को जमकर खरी-खोटी सुनाई। बड़ी मज़े की बात यह है कि विश्वम्भरनाथ शर्मा ने दो-तीन कहानियाँ अछूत समस्या पर लिखी थीं और अपनी कहानियों में अछूतों को अधिकार देने और सवर्णों को अछूतों के प्रति नजरियाँ बदलने की हिमायत करते थे।[32] जब

[31] नरेशचंद्र चतुर्वेदी (1957) : 231; राम स्वरूप चतुर्वेदी (2010) : 155 और डॉ. सत्येन्द्र (2005) : 89.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 330

अछूतों को वास्तविक जीवन में अधिकार देने की बात आई तो उन्होंने डॉ. आंबेडकर जैसे महान चिंतक और सुधारक का सिर्फ़ विरोध ही नहीं किया बल्कि उच्च श्रेणी की मानसिकता के दंभ में उनका मज़ाक भी उड़ाया। डॉ. आंबेडकर को लेकर विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने लिखा था :

> मौलाना ने मैदान छोड़ा तो डॉ. आंबेडकर खम ठोंक कर आ डटे। कसम भंग भवानी की, उन्होंने वह अड़ंगा लगाया है कि सारा हिंदुस्तान थर्रा गया। मौलाना बुड्ढे थे यह अभी जवान पट्ठा है। राउंडटेबुल कॉन्फ्रेंस में विलायती गौओं का मक्खन खा-खाकर तैयार हुआ है। देखिए न, तमाम हिंदुस्तान भर के नेता ज़ोर लगा रहे हैं, मगर वह टस से मस नहीं होता। यहाँ तक कह डाला कि महात्मा जी मरते हों तो मर जाएँ, मैं इन राजनीतिक धमकियों में नहीं आता। यह दम-खम भला किसी दूसरे में है? लोग कहते हैं कि बछड़ा सदैव खूँटे के बल पर रहता है। सो जनाब, जिस खूँटे से डॉक्टर साहब बँधे हैं, वह खूँटा कोई कमज़ोर खूँटा नहीं है, शेषनाग की खोपड़ी तक पहुँचा हुआ है। उस खूँटे के बल पर डॉक्टर साहब आसमान तक छू सकते हैं। कुछ लोग कह रहे हैं कि यह डॉ. आंबेडकर है कौन? सन् 1930 के पहले तो इनको कोई जानता भी नहीं था। अपने राम इस लचर दलील को रुपये में सत्रह आने भी मानने के लिए तैयार नहीं। मदारी लोग देखते-देखते आम का पेड़ पैदा कर देते हैं, साँप निकाल देते हैं। तब यदि डॉ. आंबेडकर पैदा कर दिए गए, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? कमाल इसी को कहते हैं। वल्लाह! क्यों बोलता-चालता पुतला पैदा किया है, जो सिवाय 'नहीं के' हाँ करना जानता ही नहीं। इसी से कहना पड़ता है कि आजकल के वैज्ञानिक ईश्वर के भी कान कतरते हैं। ऐसे मायावी वैज्ञानिकों से जीतने की आशा रखना अगर ख़ामख़याली नहीं है, तो फिर है क्या? और जनाब, एक कमाल हो तो कहा जाए। यहाँ तो कमाल पर कमाल और उस पर भी कमाल का परदादा सवार है। तमाम हिंदुस्तान और हिंदुस्तान के अधिकांश अछूत गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे हैं कि हमारे नेता महात्मा गांधी हैं, डॉ. आंबेडकर नहीं, मगर फिर भी वह नेता बने ही हुए हैं। किसकी मजाल है, जो उन्हें अछूत नेता के सर्वोच्च आसन से हटा सके। लोग बका करें, नेता झख मारा करें, महात्मा जी उपवास करके मर जाएँ मगर डॉक्टर साहेब नेता बन बैठे सो बन बैठे।[33]

इतना लिखने के बाद विश्वम्भरनाथ शर्मा का मन नहीं भरा। इसके बाद विश्वम्भरनाथ शर्मा ने डॉ. आंबेडकर को लेकर एक मनगढ़ंत कहानी गढ़ी। इस कहानी में दिखाया कि अछूत अपना उद्धारक डॉ. आंबेडकर को नहीं बल्कि गांधी को मानते हैं। यह कहानी कुछ इस तरह थी :

> हमारे मेहतर ने अपने राम से प्रश्न किया कि बाबू जी, यह डॉ. आंबेडकर कउन हैं । अपने राम बोले – हमें तो ठीक-ठीक पता नहीं है। तुम्हारी ही जाति-बिरादरी के होंगे।
> इतना सुनते ही वह बिगड़ कर बोला – अरे बाबू, हमरी बिरादरी मा ऐसा कौनो नहीं है, होत

[32] विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक' (1922) : 66; विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक' (1928) : खंड-1, संख्या : 2, वर्ष : 1 : 67.

[33] विजयानन्द (दुबे जी) मूलनाम विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक' (1932) : 694-95.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 331

तो हम ओहका हुक्का पानी बन्द करवा देइत। यौ तो हमें जान परत है कौनो इरिट्टान-कि-रिहान है।
अपने राम ने पूछा – क्या भई, हुक्का-पानी क्यो बन्द करवा देते?
वह बोला – जो गांधी बाबा की बात न मानै वह हमरी जाति का आदमी कैसे होई सकत है, यौ कौनों अमार-चमार, बौरिया, धानुक होई।
इसी समय एक दूसरा मेहतर उधर से निकला। वह हम लोगों की बातें सुन कर खड़ा हो गया और बोला काहे बाबू जी, यौ आंबेडकर ससुर कौने मुलक का मनई है?
अपने राम बोले – घबरायो नहीं, वह यहीं का है। आस्ट्रेलिया या अफ़्रीका से पकड़ कर नहीं आया है।
वह – तब फिर गांधी बाबा के परान काहे लीन्हे न लेत है?
अपने राम – तुम्हीं लोगों के भले के लिए।
अपने राम का मेहतर बोला – बाबू जी की बातें। अबही लग कौने बिलुका मा घुसे रहे जो आज हम लोगन का भला सोचै ख़ातिर निकरे हैं। हम तो गांधी बाबा की बात मान सकित है। ऐसे ऐरन गैरन नाथू खैरन को पूछत को है?
दूसरा मेहतर बोला – बाबू जी हम सुन यौ विलायत की कौंसिल मा गा रहै।
अपने राम – हाँ, गया तो था! वह – यौ हुवाँ कैसे पहुँचिगा?
अपने राम – सरकार ने भेजा था?
वह- तो पढ़ा-लिखा होई?
अपने राम – हाँ, अगरेजी पढ़ा है।
अपने राम का मेहतर बोला – बाबू जी, खता माफ कीन्हौ, इन चमार-गडरियन का पढ़ाए यहै दसा होत है। ई जहाँ चार अच्छर पढ़ लिहिन तहाँ अपने का लाट साहब का नाती ही समझे लागत हैं।
अपने राम – भई, वह तुम लोगों को भी पढ़ाने लिखाने और लाट साहब की कौन्सिल में भेजने की कोशिश कर रहा है।
दूसरा मेहतर बोला – हमरे उपर दया राखैं। कुछ अपना पढ़िके पूरा किहिन है – अब कुछ हम लोगन का पढइ है । उनकी तो धजा(ध्वजा) फहराय रही है – सारी दुनिया मा थुड़ी-थुड़ी होइ रही है। सरमदार होय तो चुलुवा भर पानी माँ डूबि मरैं।
अपने राम का मेहतर बोला – और बदनाम हम लोगन का करत-फिरत है – यौ मजा देखौ। ओहसे कोनौ पूछै कि हम लोग कब ओहके हाथ ज़ोरन गै रहन कि हमरे ख़ातिर तू गांधी बाबा से लड़ाई लड़।
दूसरा मेहतर बोला – अरे भइया की बातें, गांधी बाबा से अधिक हम लोगन का हितू और कोनौ नहीं होइ सकत। एहिमाँ कुछ उनही का मतलब होई।
अपने राम ने कहा – यह तो भगवान जाने। हम कैसे कहें।
दूसरा मेहतर आपन कहौ, मुदा हम तो छाती ठोंक के काहित हैं। गांधी बाबा का छोड़िके और कोनौं जो यह कहै कि वह हम लोगन का हिमायतदार है तो वह ...[34]

[34] वही : 695-96.

6.

हिंदू सुधारकों और लेखकों की ओर से डॉ. आंबेडकर पर संयुक्त निर्वाचन को स्वीकार करने का चौतरफ़ा दबाव बनाया जाने लगा था। डॉ. आंबेडकर को पता था कि संयुक्त निर्वाचन यदि उन्होंने स्वीकार कर लिया तो अछूत राजनीतिक तौर पर पंगु हो सकते हैं। डॉ. आंबेडकर तीन-चार दिन तक अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे और संयुक्त निर्वाचन स्वीकार करने से साफ़ इनकार कर दिया। इधर, हिंदू नेताओं और लेखकों की तरफ़ से उन पर गांधी के प्राण रक्षा के नाम पर इमोशनल दबाव लगातार बनाया जाता रहा। गांधी के आमरण अनशन को लेकर तीन दिन तक डॉ. आंबेडकर और हिंदू नेताओं के बीच रस्साकशी चलती रही। अंततः डॉ. आंबेडकर ने 24 सितम्बर 1932 को सुबह संयुक्त निर्वाचन का प्रस्ताव स्वीकार करते हुए गांधी के साथ एक समझौता किया। जिसे इतिहास में 'पूना-पैक्ट' समझौता का नाम दिया गया।

पंडित मदन मोहन मालवीय, श्री सी.राजगोपालाचार्य, सर तेजबहादुर 'सप्रू', श्री एम. पिल्ली, सर सी.बी. मेहता, श्री घनश्यामदास बिड़ला, श्री राजा, श्री देवधर, श्री पी. बालू, श्री कपरुलाकर, श्री राजभोज, श्री वारवले, राजेन्द्र प्रसाद आदि नेताओं ने हस्ताक्षर कर समझौता की कॉपी ब्रिटिश प्रधानमंत्री को भेज दी। 26 सितम्बर, 1932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री की ओर से पूना-पैक्ट समझौते को स्वीकार करने का तार आ गया। इस समझौते के स्वीकृत होने की ख़बर से गांधी दल के नेताओं और लेखकों के बीच ख़ुशी की लहर छा गई। गांधी जी को शाम चार बजकर पंद्रह मिनट पर ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा समझौते को स्वीकृत करने की सूचना दी गई। गांधी जी ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री के समझौते को पढ़ने के बाद शाम पाँच बजे आमरण अनशन तोड़ने की घोषणा कर दी। इस अवसर पर रवींद्रनाथ टैगौर ने *गीतांजलि* का पाठ किया। इसके बाद उपस्थित नेताओं और लेखकों ने गांधी जी के प्रिय भजन का गान किया। श्रीमती कमला नेहरू ने नींबू-पानी का गिलास तैयार किया। गांधी जी ने कस्तूरबा बाई के हाथों से नींबू पानी पीकर अपना आमरण अनशन तोड़ दिया।

वैसे, देखा जाए तो यह समझौता गांधी और आंबेडकर दोनों की नज़रों में इसके मायने एक जैसे नहीं थे। गांधी के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक से ज़्यादा मसला, अछूतों को हिंदू धर्म के दायरे में समाहित कर लेने का था। औपनिवेशिक भारत बाबा साहेब ने इसे सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक और आर्थिक परिधि के भीतर दलित चिंतन की स्वतंत्रता और हिंदुओं से अलग राजनीतिक पहचान बनाने के तौर पर परिभाषित किया था। इस ऐतिहासिक समझौते में भले ही विजय गांधी और उनके समर्थकों को मिली थी पर गांधी जी इस बात को महसूस कर चुके थे कि इस जीत की बुनियाद क्षणभंगुर और कमज़ोर है। पूना-पैक्ट समझौते में मिली गांधी की विजय पर डी.आर. नागराज ने ठीक ही लिखा है कि, 'परिस्थिति पूरी तरह राष्ट्रपिता के पक्ष में थी, लेकिन सौभाग्य से, वे इतिहास के लंबे दौर में क्षणभंगुर जीतों पर ख़ुश होने वाले नहीं थे। गांधी के लिए सत्य ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था और दिल ही दिल में वे जान गए थे कि उनकी जीत की बुनियाद कमज़ोर है।[35]

[35] डी.आर. नागराज (2002) : 68.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 333

जब गांधी जी ने आमरण अनशन तोड़ा तो हिंदी संपादकों की ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने गांधी जी के उपवास तोड़ने वाले क्षणों को दैवी दृश्य की संज्ञा दे डाली। *सुधा* पत्रिका के संपादक ने अपनी ख़ुशी प्रकट करते हुए लिखा :

> 5 बजे महात्मा जी ने उपवास तोड़ा। उपवास तोड़ते समय वहाँ दैवी दृश्य उपस्थित था। महात्माजी ने प्रधानमंत्री के समझौते की स्वीकृति का संदेश खाट पर पड़े-पड़े पढ़ा। कुछ देर तक उस पर विचार किया। बिना कुछ कहे हुए उसे मित्रों को पढ़ने को दिया। उन्होंने उसे पढ़ा, और आपस में विचार परिवर्तन-किए। गांधीजी भी बीच-बीच में भाग लेते थे। महात्माजी ने तब उन लोगों से प्रधानमंत्री के वक्तव्य का मतलब समझाने को कहा। उन सबने एकमत से उस पर पूर्ण संतोष प्रकट किया, और उपवास को समाप्त करने की राय दी। गांधीजी ने उन सब लोगों की बातें सुनीं, और उपवास तोड़ने के लिए सब सामग्री प्रस्तुत करने को कहा। कवींद्र रवींद्र आदि वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने गीतांजलि से मंद-मंद स्वर में एक गाना गाया। शांति का साम्राज्य छा गया, और हर्षातिरेक से शरीर रोमांचित हो उठे। उसी समय वहाँ एक 'सी' श्रेणी का बंदी मौजूद था। उसने भी एक गाना गाया। तदनंतर सभी उपस्थित व्यक्तियों ने मिलकर महात्मा गांधी का अत्यंत प्रिय भजन 'वैष्णवजन तो तेणे कहिए, जे पीर पराई जाणे रे' गाया। फिर बच्चों को फल बाँटे गए। श्रीमती कमला नेहरू ने एक गिलास में दो मीठे नींबुओं का रस निचोड़ा। श्रीमती कस्तूरीबाई ने काँपते हुए हाथ से गिलास महात्माजी को दिया। महात्माजी ने खाट पर बैठे हुए धीरे-धीरे एक-एक घूँट करके पिया। सरदार पटेल और श्री महादेव देसाई महात्माजी को सहारा दे रहे थे। यह उपवास, जो दो अभिन्न मित्रों की उपस्थिति में प्रारंभ किया गया था, ऐसे अवसर पर समाप्त हुआ, जब उनके परिवार के लगभग 100 निकट संबंधी और इष्ट-मित्र मौजूद थे।[36]

अब यह जाना जाए कि संतराम बी.ए. की 'पूना-पैक्ट' समझौता पर प्रतिक्रिया क्या थी? 'पूना-पैक्ट' समझौते पर संतराम बी.ए. की राय हिंदी लेखकों से जुदा न थी। संतराम बी.ए. का मानना था कि गांधी के महाव्रत ने हिंदू समाज को छिन्न-भिन्न होने से बचा लिया। उन्होंने अपने जीवन की जमानत पर कुछ ही क्षणों में अछूतपन को मिटा डाला। संतराम बी.ए.ने 'पूना-पैक्ट' प्रकरण को लेकर लिखा :

> महान तपस्वी के इस घोर तप का परिणामस्वरूप आज समूचे भारत मंडल में, कश्मीर से कुमारी अंतरीप तक और कराची से लेकर कलकत्ता तक शिक्षित हिंदू समाज ने अपने हृदय-मंदिर दलित भाइयों के लिए खोल दिए हैं। इन हरिजनों को कुआँ पर चढ़ाया गया है, उनके साथ भोजन बनाकर खाया गया है, और देवालयों में प्रवेश कराया गया है। अहा महात्मा का कैसा पुण्य-प्रताप है! जिस काम के वर्षों में होने की आशा न थी, वह केवल पाँच दिन में हो गया।[37]

इसके बावजूद संतराम बी.ए. का मानना था कि जब तक वर्णधारी रोटी-बेटी की बेड़ियाँ नहीं तोड़ेंगे तब तक जात-पाँत रोग का स्थाई तौर से समूल नाश नहीं हो सकता है।

[36] *सुधा, अक्टूबर* (1932) : 412.

[37] संतराम बी.ए. (1932) : 350.

7.

गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस से लेकर पूना-पैक्ट समझौता होने के बाद हिंदी की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में अछूत समस्या पर कहानी, कविता और संपादकीय लेखों की बाढ़ आ गई। हिंदी के लेखक गांधीवादी कसौटी के मुताबिक़ अपनी कहानियों के पात्र गढ़ने लगे थे। डॉ. धनीराम प्रेम (1904-1979) हिंदी नवजागरण काल के प्रसिद्ध कथाकर थे। *चाँद* पत्रिका के स्टार लेखक हुआ करते थे।[38] डॉ. धनीराम प्रेम ने अछूत शीर्षक से एक कहानी लिखी थी। यह कहानी *चाँद* पत्रिका के जून 1932 के अंक में 'पूना-पैक्ट' समझौता होने के दो महीने पहले प्रकाशित हुई थी। डॉ. धनीराम प्रेम की यह कहानी धर्मांतरण और मंदिर प्रवेश की समस्या को सामने लाती है। इस कहानी का पात्र श्यामलाल जो जाति से ब्राह्मण है जिसे कथा लेखक ने अछूत हितैषी के तौर पर प्रस्तुत किया है। श्याम लाल पेशे से गायक है। वह एक दिन संध्या के समय राय साहेब के यहाँ से गाकर लौट रहा था, तभी एक चौदह वर्ष की चमारिन गंगा ने उसे गुलाब का गुच्छा भेंट किया। गंगा ने श्यामलाल से कहा कि वह अछूत होने के कारण राय साहेब की महफ़िल में गाना सुनने नहीं आ सकती थी। यह सुनते ही श्यामलाल ने गुलाब का गुच्छा ज़मीन पर फेंक दिया। गंगा बोली :

> मैं नहीं जानती थी कि आप भी ऐसे ही होंगे। क्यों आप अपना गाना बाहर निकलते ही भूल गए? वह एकता और समानता का राग केवल महफ़िल के ही लिए था? मैं समझती थी कि आप ही संसार में ऐसे हैं, जो ऊँच-नीच का भेद नहीं मानते। मैं आप ही को भगवान समझने लगी थी। नित्य नियम से इस कोने पर आकर उस गाने को सुनती थी और नित्य मेरी भक्ति कुल आप में बढ़ती जाती थी। परंतु मुझे क्या मालूम था कि वह केवल एक गान था! ख़ैर! मेरी धृष्टता को क्षमा करना।

यह सुनने के बाद श्यामलाल के हृदय में परिवर्तन हुआ, उसने गंगा से पूछा कि मेरा कौन-सा गाना तुम्हें याद है। गंगा गाना गाकर सुनाती है –

> एक पिता के सब संतान, कोई बड़ा न छोटा हममें, सब हैं एक समान।
> वैश्य, ब्राह्मण, चमार, नाई, हिंदू, मुस्लिम या ईसाई;
> यह सब कृत्रिम भेद-भाव है, इनमें तत्व न जान।
> लग जा सबके गले प्रेम से, तज झूठा अभिमान।

[38] इनकी बहुत सी कहानियाँ, लेख, यात्रावृत्तांत नवजागरणकालीन पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं. डॉ.धनीराम प्रेम ने *चाँद* पत्रिका का पाँच-छह वर्षों तक संपादन भी किया था. सन् 1921 में मेडिकल कालेज बंबई से डॉक्टरी की डिग्री प्राप्त करने के बाद सन् 1931 में डॉक्टरी की पढ़ाई करने के लिए इंग्लैंड चले गए. वहाँ से एम.आर.सी.एस.और एल.आर.सी.पी. की डिग्री प्राप्त करने के बाद भारत लौट आए थे. भारत में कुछ वर्षों तक रहने के बाद सन् 1938 में अपनी पत्नी रतन प्रेम के साथ लंदन चले गए और वहीं स्थाई तौर पर बस गए थे. इन्होंने वल्लरी, वेश्या का हृदय, वीरागंना का पन्ना, प्रेम गीतांजलि और प्राणेश्वरी आदि किताबें लिखी थीं. डॉ. धनीराम प्रेम का *देवी जोन* (1934) नामक उपन्यास काफ़ी प्रसिद्ध हुआ था.

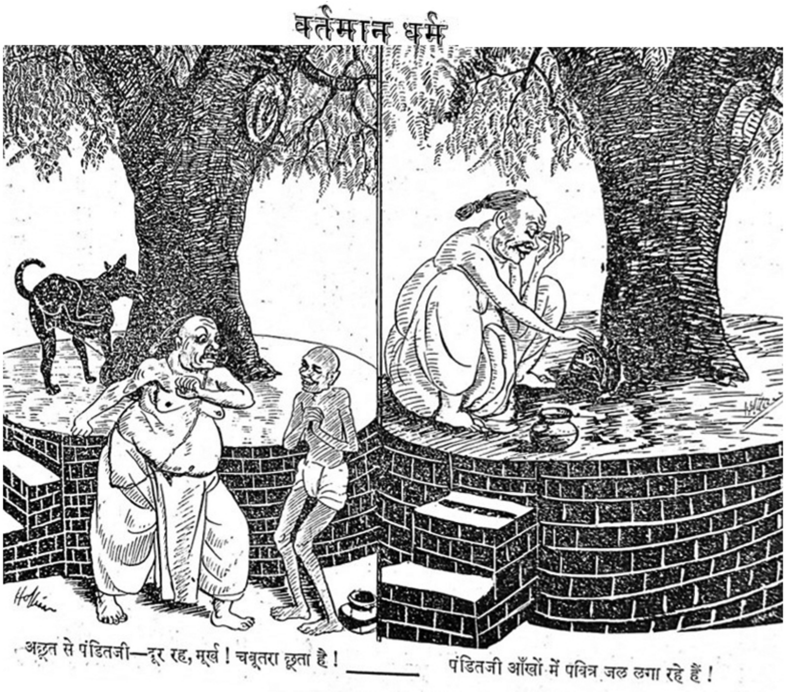

स्रोत : सुधा, नवंबर, 1933, वर्ष : 4, खंड : 1, संख्या : 4

> सबका एक वही भगवान। एक पिता के सब सन्तान।।
> कोई बड़ा न छोटा हममें, सब हैं एक समान ।।

डॉ. धनीराम प्रेम कहानी के अगले हिस्से में दिखाते हैं कि गंगा मंदिर में प्रवेश करने की कोशिश करती है पर उच्च श्रेणी के हिंदू उसे घसीट कर मंदिर परिसर से बाहर खदेड़ देते हैं। मंदिर प्रवेश को लेकर गंगा कहती है कि गिरजे घर के महादेव हिंदुओं के महादेव की तरह अछूतों से घृणा करने वाले नहीं होते हैं। चर्च के भगवान बड़े दयालु होते हैं और सबको समान दृष्टि से देखते हैं। चर्च के भगवान की प्रशंसा गंगा इन शब्दों में करती है :

> गिरजे के महादेव जी दयालु हैं, सबको एक दृष्टि से देखने वाले हैं। हमारे पड़ोस का मुरली जब से क्रिस्तान हुआ है, तब से वह सबके साथ जाकर गिरजे में बैठता है। सब ईसाई उससे हाथ मिलाते हैं। जो पादरी साहब हमारे यहाँ आया करते थे, वे कभी-कभी उसके साथ खाना खाया करते हैं। यही नहीं, जब कभी वह यहाँ आता है तो रायसाहब की कुर्सी पर बैठता है। एक दिन वह कह रहा था – 'हिंदू अपने भगवान से ईसाइयों के भगवान की ज़्यादा इज़्ज़त करते हैं। क्योंकि जब मैं हिंदू था तो कोई मेरी ओर देखता भी नहीं था और जब से ईसाई हुआ हूँ, बड़े-बड़े हिंदू हाथ मिलाते हैं और पास बिठाते हैं। 'पुजारी जी के महादेव जी से तो ईसाइयों के महादेव जी अच्छे हैं।

बड़ी दिलचस्प बात यह है कि गंगा चमारिन उच्च श्रेणी के हिंदुओं द्वारा अत्याचार किए जाने पर भी वह ईसाई बनने से इंकार कर देती है। इस कहानी के अंत में एक उच्च श्रेणी का ब्राह्मण श्यामलाल अछूतोद्धार की ख़ातिर चमार बन जाता है। डॉ. धनीराम प्रेम अपनी इस कहानी का समाहार इन शब्दों में करते हैं –

> 'गंगा अब मेरी है। वह बाह्मणी है या मैं चमार हूँ, कह नहीं सकता। परंतु इतना मैं जानता हूँ कि हम दोनों एक-दूसरे के साथ बड़े सुखी हैं। मूर्ख उसे चमारी कहें, अछूत कहें या कुछ भी कहें, वह चंद्र – ज्योत्स्ना के समान विमल है, वसंत के समान सौरभमयी है और इस अनन्त विश्व के समान विशाल-हृदया है।'[39]

इलाचंद्र जोशी हिंदी नवजागरण काल के प्रसिद्ध लेखक और संपादक थे। इन्होंने *विश्वमित्र* जैसी बड़ी पत्रिका का संपादन भी किया था। इलाचंद्र जोशी गांधीवादी दृष्टि के कायल थे। इन्होंने *विश्वमित्र*, जून 1933 के अंक में अछूत समस्या पर *बरेठन* शीर्षक से कहानी लिखी थी। कथा लेखक ने कहानी में दिखाया है कि सवर्ण समाज के युवक अछूतोद्धार की ख़ातिर चमार-धोबी तक बनने के लिए तत्पर हैं। इस कहानी की पात्र रधिया है। वह धोबी जाति से है जिसकी शादी हो चुकी है पर उसके पति ने छोड़ दिया है। रधिया का पिता बुद्धन सवर्णों के कपड़े धोने का काम करता है। रधिया सवर्णों के घर कपड़े लेने और धुले कपड़े देने जाया करती थी। इलाचंद्र जोशी कहानी की कथा में दिखाते हैं कि भगवतीचरण नाम का बी.ए.पास उच्च कुलीन लड़का रधिया पर मोहित हो जाता है। इलाचंद्र जोशी ने भगवतीचरण का परिचय देते हुए लिखा कि भगवतीचरण बहुत पहले बी.ए.पास कर चुका था और तबसे बेकार बैठा था। उसके पिता कॉन्ट्रेक्टर थे और उनकी आर्थिक दशा काफ़ी अच्छी थी। इसलिए भगवती अपनी बेकारी के कारण अधिक चिन्तित नहीं था, और अछूतोद्धार के आंदोलन में जी-जान से लग गया था अर्थात् अछूतोद्धार के संबंध में नगरवासियों की सभाओं में बड़ी जोशीली वक्तृताएँ दिया करता था।

एक दिन रधिया धुले कपड़े देने भगवतीचरण के घर गई। भगवतीचरण ने रधिया का हाथ पकड़ कर बोला कि यदि तुम मेरे प्रेम प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करोगी तो अफ़ीम खाकर अपनी ज़िंदगी स्वाहा कर लूँगा। इलाचंद्र जोशी कथा के अगले हिस्से में दिखाते हैं कि भगवतीचरण रधिया को लेकर फ़रार हो जाता है पर वह एक महीने बाद रधिया के पिता बुद्धन के घर आ खड़ा हुआ। भगवती ने बुद्धन को बताया कि रधिया को भगा ले गया था लेकिन अब उससे शादी करना चाहता हूँ। इस बात को लेकर अछूतों की पंचायत बैठी जिसमें भगवतीचरण ने कहा कि :

> 'मैं भी आप लोगों की जाति में शरीक होना चाहता हूँ, इसका जो उपाय आप लोग बताएँ वह करने के लिए तैयार हूँ। कल से मैं भी आप लोगों के साथ घाट पर कपड़े धोऊँगा'

इसके बाद उच्च कुलीन भगवतीचरण रधिया से विवाह कर धोबी बन गया। इस घटना

[39] डॉक्टर धनीराम प्रेम (1932) : 130

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 337

के बाद गाँव के सवर्णों ने अछूतोद्धार के लिए बड़ा तप और त्याग बताया। इलाचंद्र जोशी कहानी का समापन इसी मोड़ पर नहीं करते हैं। वे कहानी की कथा में आगे दिखाते हैं कि रधिया वेश्या बन जाती है। जबकि इस कहानी की कथा में ऐसी कोई गुंजाइश नहीं थी कि रधिया वेश्या बना दी जाए। चूँकि इलाचंद्र जोशी को भगवतीचरण के धोबी बनाने का बदला अछूतों से लेना था। इसलिए उन्होंने अछूत समाज की बेटी को वेश्या बना डाला। इलाचंद्र जोशी इस कहानी का समापन इन शब्दों करते हैं –

> पता लगाने पर मालूम हुआ है कि रधिया आजकल किसी बड़े शहर के एक वेश्यालय में है। भगवतीचरण इस समय भी घाट पर कपड़े धोता है। उसने एक दूसरी बरेठन से विवाह कर लिया है। सुना जाता है कि वह इस नये विवाह से अत्यंत संतुष्ट है।[40]

इंद्र. यू. वसावड़ा हिंदी नवजागरणकालीन लेखक थे। इन्होंने *घर की राह* (1935) शीर्षक से एक उपन्यास अछूत समस्या पर केंद्रित कर लिखा था। इंद्र यू वसवाड़ा की *हंस* अगस्त 1933 के अंक में 'रामू भंगी' शीर्षक से एक कहानी छपी थी। इस कहानी के पात्र बाबू रघुबर दयाल हैं, जो म्युनिसिपैलिटी के प्रेसिडेंट हैं। गाँव के अधिकाश भंगी म्युनिसिपैलिटी साफ़ सफ़ाई का काम करते हैं। रामू भंगी प्रेसिडेंट बाबू रघुबर दयाल का घेरलू नौकर है। इस कहानी पर भी गांधीवादी अछूतोद्धार की छाप दिखाई देती है। बाबू रघुबर दयाल का एक बेटा विमल है। जो शांति निकेतन में पढ़ता है और गांधी के अछूतोद्धार से प्रभावित है। कथा लेखक ने विमल के परिचय में लिखा कि, विमल, बाबू रघुबर दयाल जी का इकलौता पुत्र था। शांति निकेतन, बोलपुर में पढ़ता था। गर्मी की छुट्टियों में अपने घर पर आया था। उसकी नसों में यौवन का जोश था। उसका हृदय दया और प्रेम से पूरित था। भारत की हीनदशा देखकर, भाव की अधिकता में वह अधीर हो उठता – शोकाकुल हो जाता। भारत के निर्धन,कंगाल, किसान, मज़दूर लोग और अस्पृश्य जातियों का ख़याल आते ही, उसकी नसों में ख़ून अधिक वेग से दौड़ने लगता। महात्माजी का, उनके सिद्धांतों का, वह पक्का अनुयायी था। कहानी की कथा में आगे दिखाया गया है कि बाबू रघुबर दयाल जी के बगीचे को कुछ सुअर नष्ट कर डालते हैं। इस बात पर रघुबर दयाल आग बबूला होकर रामू भंगी और उसकी पत्नी मथुरिया को ख़ूब प्रताड़ित करता है। बड़ी ताज्जुब की बात है कि कथा लेखक ने इसके लिए बाबू रघुबर दयाल को दोषी नहीं मानता है। इंद्र यू वसावड़ा लिखते हैं :

> बाबू रघुबर दयाल जी को हम निर्दय नहीं कह सकते। उनका चरित्र अपने आसपास के वातावरण से बना था। भंगियों या चमारों को गालियाँ देना, उन पर क्रोधित होना, और उन्हें जूते लगवाना – उनके लिए कोई नई बात न थी। इस कृत्य से उनके हृदय में कोई ख़ास भाव भी न पैदा होता था।[41]

---

[40] इलाचंद्र जोशी (1933) : 351.

[41] इंद्र. यू. वसावड़ा (1933) : 13.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 338

स्रोत : *युगांतर*, मार्च 1933

इस कहानी का मंतव्य सिर्फ़ इतना था कि सवर्ण पृष्ठभूमि की युवा पीढ़ी अपने घर-परिवार का विरोध सहकर अछूतों की ख़ातिर आहुति देने के लिए तैयार है।

रामनारायण 'यादवेंदू' ने *चाँद*, अक्टूबर 1933 के अंक में इंदुकला शीर्षक से अछूत समस्या पर एक कहानी लिखी थी। लेखक की इस कहानी में गांधीवादी विचारों की छाप दिखाई देती है। इस कहानी का पात्र चंद्रगुप्त जो अछूतों में से जाटव जाति का है। कथा लेखक रामनारायण 'यादवेंदू' ने उसका परिचय इन शब्दों में दिया हैं – 'चंद्रगुप्त एक सुंदर युवक है। आयु पच्चीस से अधिक नहीं है। उसका जन्म हुआ जाटव कुल में – 'जाटव' जिन्हें महात्मा गांधी प्रेम और भक्ति के भाववेश में *हरिजन* नाम से पुकारते हैं और गर्वोन्मत्त जात्याभिमानी उन्हें दलित कहकर अपने पतन का परिचय देते हैं।' कहानी के अगले हिस्से में दिखाया गया है कि चंद्रगुप्त शिक्षा प्राप्त करने के बाद 'हरिजन' पत्र के संपादकीय विभाग में नौकरी करने लगता है। थोड़े समय में ही चंद्रगुप्त अपने त्याग और परिश्रम से नगर में प्रसिद्ध हो जाता है। कथा लेखक कहानी के दूसरे हिस्से में दिखाता है कि कन्या-गुरुकुल से स्नातिका उच्च कुल की स्त्री इंदुकला गांधी के सितंबर महीने वाले उपवास से प्रभावित होकर हरिजन सेवा को अपने जीवन का ध्येय बना लेती है। ग़ौरतलब है कि गांधी जी ने सितम्बर महीने में अछूतों के पृथक निर्वाचन के ख़िलाफ़ अनशन किया था। इंदुकला चंद्रगुप्त के अभूतपूर्व व्यक्तित्व पर मुग्ध हो जाती है। एक दिन चंद्रगुप्त को इंदुकला अपने यहाँ भोजन पर आमंत्रित करता है। वह इंदुकला के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते हुए कहता है कि 'कला, मैं आज अपना हृदय तुम्हारे

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 339

सामने खोलकर रख देना चाहता हूँ। क्या तुम उसकी स्वामिनी बनना स्वीकार करोगी?' इंदुकला उसके प्रणय निवेदन को स्वीकार कर अपने अछूतोद्धार के व्रत को पूरा करती है। रामनारायण 'यादवेंदू' लिखते हैं – 'आज उसकी साध पूरी हुई जब से उसने सेवा व्रत लिया, तब से उसकी एकमेव कामना यही थी कि वह किसी हरिजन व्यक्ति को आत्म समर्पण कर सेवा मार्ग को परिष्कृत करे।'[42]

भदंत आनंद कौसल्यायन ने *युगांतर*, जुलाई 1934 के अंक में मंदिर-प्रवेश शीर्षक से एक कहानी लिखी थी। यह कहानी बताती है कि गांधी की अपील के बाद भी अछूतों को लेकर पुरोहितों का नज़रिया नहीं बदला था। पुरोहित और पोथाधारी अछूतों को मंदिर में घुसने नहीं देते थे। भदंत आनंद कौसल्यायन कहानी की कथा में दिखाते हैं कि अछूत रामू मंदिर की सीढ़ियों पर बैठा है। पुजारी रामलाल उससे प्रेम प्रदर्शित करते हुए पूछता है – 'किधर आए रामू!' रामू ने पुजारी से कहा – 'मालिक! भगवान के मंदिर में हमें भी जाने दीजिए।' रामू मंदिर प्रवेश के लिए तमाम दलीलें देता है लेकिन मंदिर का पुरोहित सनातनी परम्पराओं का हवाला देकर रामू की मंदिर-प्रवेश वाली मनोकामना पर पानी फेर देता है। मंदिर का पुजारी कहता है – '*रामू ! एउ तो मेरा भी है कि किसी तरह तुम लोगों के लिए मंदिर का द्वार खुल जाए; लेकिन देखते हो, यह अकेले मेरे बस कि बात नहीं। तुम जाकर भगवान से प्रार्थना करो कि किसी तरह लोगों का मन फेर दें और लोग तुम्हारे मंदिर–प्रवेश पर राजी हो जाए ना*'[43] गांधी के अछूतोद्धार की ज़मीनी हक़ीक़त का यह हाल था। सवर्णों का नज़रिया अछूतों के प्रति बदल नहीं रहा था। कभी-कभार हिंदू सुधारकों के दबाव में आकर सवर्ण अछूतों को मंदिर और कुआँ पर चढ़ा लेते पर उनके चले जाने पर सवर्णों द्वारा मंदिर और कुआँ का शुद्धीकरण किया जाता था।

साहित्यिक लिहाज़ से भले ही 'अछूत' नायक-नायिकाओं का हिंदी कहानियों के केंद्र में आना एक नई बात ज़रूर थी। देखा जाए तो सवर्ण पृष्ठभूमि से आए कथाकारों ने अछूत समस्या को केंद्र बनाकर जो कहानियाँ लिखीं उनके सौंदर्यशास्त्र में कोई नयापन दिखाई नहीं दिया। मसलन, इन कहानियों में किसी अछूत पात्र को अछूतोद्धार के नायक के तौर पर पेश नहीं किया गया। नवजागरणकालीन हिंदी कथा लेखक जातिभेद से संचालित सौंदर्यशास्त्र से अलग दलितों की छवि पेश करने में असमर्थ रहे। मसलन,अछूत पात्रों का हिंदू धर्म के प्रति कोई उग्र भाव उभर कर सामने नहीं आया। हिंदू धर्म में उनकी बड़ी गहरी आस्था है, दिखाने का प्रयास किया गया। इन कहानियों में अछूत प्रतिरोध की नहीं अनुरोध की भाषा में बोलते हैं। अछूत केंद्रित कहानियों में सुधारक की आत्म छवि अछूत के सहयोगी की नहीं उपकारी के तौर पर उभर के सामने आती है। जैसे, सवर्ण नायक का डिकास्ट होना,अछूतोद्धार के लिए बड़ा त्याग बताया गया। इन कहानियों की एक दिलचस्प बात है यह भी है कि सवर्ण तो चमार-धोबी बनते नज़र आएँ पर चमार-धोबी का विकास ब्राह्मण और ठाकुर के तौर पर दिखाई नहीं दिया।

[42] श्री रामनारायण, 'यादवेंदू' (1933) : 603.

[43] भदंत आनंद कौसल्यायन (1934) : 603.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 340

वास्तव में औपनिवेशिक भारत में साइमन कमीशन, गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस और पृथक निर्वाचन जैसी ऐतिहासिक घटनाओं के दबाव में हिंदी नवजागरणकालीन लेखकों को अछूतोद्धार का आंदोलन चलाना पड़ा था। सवर्ण पृष्ठभूमि से आए लेखकों ने गांधीवादी पद्धति में अछूत समस्या का समाधान देखा था,उनकी दृष्टि में अछूतों की हर मर्ज़ की दवा गांधी थे। नवजागरणकालीन लेखकों और संपादकों ने डॉ. आंबेडकर की नज़र से अछूत समस्या को देखने-समझने का प्रयास नहीं किया और न तो अछूत मुद्दों पर उनका समर्थन किया। प्रेमचंद जैसे दृष्टि संपन्न लेखक और संपादक ने भी अछूत समस्या का समाधान केवल गांधी के आंदोलन में देखा। वह भी अछूत मसले पर गांधीवादी घाट के पार नहीं जा सके। यह हिंदी नवजागरणकालीन लेखकों की अपनी दुविधाएँ थीं या फिर उनका सवर्णपन आड़े आ गया जो डॉ. आंबेडकर जैसे अछूत विचारक की अगुआई को स्वीकार नहीं कर पा रहा था। इस बात का भी दावा नहीं किया जा सकता है कि गांधी जी के अछूतोद्धार से अछूतों का सामाजिक और जातिगत मसला हल हो गया था, उनका अछूतोद्धार भी सवर्णों का नज़रिया और आचरण अछूतों के प्रति नहीं बदल सका। पूना-पैक्ट के बाद सवर्णों के अछूतोद्धार का कोई ख़ास मतलब नहीं रह गया था क्योंकि अछूतों के सवाल दीगर थे और सवर्ण लेखकों के इस मसले पर जवाब दीगर थे।

संदर्भ

अछूत समस्या, संपादकीय, *माधुरी*, भाद्रपद, 306 तुलसी संवत, 1989, वर्ष : 11, खंड : 1,संख्या : 2.

इंदुकला, श्री रामनारायण 'यादवेंदू' बी.ए., *चाँद*, अक्टूबर 1933, वर्ष : 11, खंड : 2, संख्या : 6.

गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस की दूसरी बैठक, नरसिंहराम शुक्ल, *सरस्वती*, जनवरी, 1932, भाग : 33, खंड : 1, संख्या 1 : 51.

गोलमेज़-परिषद् में गोलमाल, हंसवाणी, प्रेमचंद, *हंस*, अक्टूबर 1931, वर्ष : 2, अंक : 4 : 61.

घनश्यामदास बिड़ला (1958), *डायरी के कुछ पन्ने,* सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली.

डॉ. धनीराम प्रेम (1932), चांद, अछूत अंक, जून, वर्ष : 10, खंड : 2, संख्या 2 : 130.

डॉ. सत्येन्द्र (2005), *निबंध निलय*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

डी. आर. नागराज (2002), 'आत्म-शुद्धि बनाम आत्म-सम्मान : दलित आंदोलन के स्रोतों की ख़ोज', अभय कुमार दुबे (सं.) *आधुनिकता के आइने में दलित*, सीएसडीएस, वाणी प्रकाशन, दिल्ली : 68.

दुबे जी की चिट्ठी, विजयानन्द (दुबे जी), *चाँद*, अक्टूबर 1932, वर्ष : 10, खंड : 2, संख्या 6 : 694-695.

नरेशचंद्र चतुर्वेदी (1957) *हिंदी साहित्य का विकास और कानपुर*, कानपुर इतिहास समिति.

पूना-पैक्ट और व्रत समाप्ति, संपादकीय, *सुधा*, अक्टूबर 1932, वर्ष : 6, खंड : 1, संख्या : 3 : 412.

पूने का समझौता, संपादकीय, *माधुरी*, आश्विन 309, तुलसी संवत, 1989, वर्ष : 11, खंड : 1,संख्या : 3.

पूने का समझौता, संपादकीय टिप्पणियाँ, संतराम बी. ए. *युगान्तर*, अक्टूबर1932 : 350.

बरेठन, इलाचंद्र जोशी, *विश्वमित्र*, जून 1933, भाग : 1, खंड : 2, वर्ष : 1.

महान् तप-1, संपादकीय, *जागरण* 19 सितबंर 1932, *प्रेमचंद रचनावली*, खंड-आठ, जनवाणी प्रकाशन प्रा. लि.

11Suresh Kumar_Layout 1 22-02-2024 15:52 Page 341

दिल्ली : 133.

महात्मा गांधी और अछूतोद्धार, सामयिक प्रसंग, *सरस्वती*, अक्टूबर 1932, संख्या : 4, खंड : 2, भाग : 33 : 477.

महात्मा गांधी की भीष्म-प्रतिज्ञा, रंगभूमि संपादकीय, चाँद, अक्टूबर 1932, वर्ष : 10, खंड : 2, संख्या 6 : 699.

माननीय मालवीय जी, बाबू राजेंद्रप्रसाद, बाबू भगवान दास, विश्ववीणा, श्री रंगा अय्यर, एम.एल.ए., श्री घनश्यामदास बिड़ला, रावबहादुर एम.सी. राजा, श्री. पी. बालू, विश्ववीणा, चाँद, अक्टूबर 1932, वर्ष : 10, खंड : 2, संख्या : 6 : 687.

मंदिर-प्रवेश, भदंत आनंद कौसल्यायन, लंका. *युगान्तर*, जुलाई 1934 : 603.

राम स्वरूप चतुर्वेदी (2010), *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.

रामू भंगी, इंद्र. यू वसवाड़ा,बी. ए. (आनर्स) *हंस*, अगस्त 1933, वर्ष : 3, संख्या 11 : 13.

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' (1928), *विशाल भारत,* फ़रवरी, खंड 1, संख्या 2, वर्ष 1 : 67.

सम्पत पासी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'(1928) : *विशाल भारत* : फ़रवरी, खंड : 1, संख्या : 2, वर्ष : 1 : 66.

संघ शासन की व्यवस्था का आयोजन, संपादकीय, *सरस्वती*, जनवरी, 1932, भाग : 33, खंड : 1, संख्या : 1 : 189.

स्टेनली वोलपर्ट (2009), *जिन्ना मुहम्मद अली से क़ायद-ए-आज़म तक,* (अनु.) अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.